ग्रामीण पाठकों के लिए

कर्मयोगी लोकमान्य तिलक

ग. प्र. प्रधान

अनुवाद
वासंतिका पुणतांबेकर

चित्रांकन
संतोष गुप्ता

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3389-5

पहला संस्करण : 2000 (शक 1922)

Karmayogi Lokmanya Tilak (Hindi)

रु. 12.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

1. विद्यार्थी, अध्यापक और संपादक

सभी व्यक्तियों के हृदय में अपनी मां और जन्मभूमि के लिए बहुत प्रेम होता है। जैसे मां को होने वाले कष्ट और अपमान को हम बरदाश्त नहीं कर पाते, वैसे ही किसी पराये देश द्वारा किए जाने वाला मातृभूमि का अपमान भी हम सहन नहीं कर पाते हैं।

जब भारत में अंग्रेजों का राज था तब भारत माता की बड़ी दुर्दशा हो गई थी। किसी समय में धन-धान्य से समृद्ध और अन्य सभी सुविधाओं से संपन्न हमारा खुशहाल भारत देश, गुलामी के कारण बहुत गरीब और दुखी हो गया था। इससे भी बड़ी दुख की बात यह थी कि लोग उस गुलामी को लाचारी से बरदाश्त कर रहे थे।

ऐसे कठिन समय में देश की आम जनता का स्वाभिमान जगाकर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने आम आदमी को स्वराज्य का मंत्र सिखायाः 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' उन्होंने भारत की जनता को तराशा, इसलिए उन्हें 'भारत का शिल्पकार' कहा जाता है। तिलक जी की जीवनी से हमें देशभक्ति की प्रेरणा मिलती है।

देश-सेवा का संकल्प

महाविद्यालय में पढ़ने के दौरान ही तिलक जी के हृदय में देशभक्ति जागृत हुई थी। डेक्कन कॉलेज में उनके साथ पढ़नेवाले उनके मित्र गोपाल गणेश आगरकर के दिल में भी मातृभूमि के प्रति ऐसा ही प्रेम था। दोनों बुद्धिमान थे और उन्हें यह विश्वास था कि स्नातक

(बी.ए.) की उपाधि वे अच्छे नंबरों से हासिल करेंगे। लेकिन उसके बाद ऊंचे वेतन वाली सरकारी नौकरी न करके देश की आजादी के लिए संघर्ष करने का निश्चय इन दोनों युवकों का उद्देश्य था।

ये कोशिशें किस तरह से तथा किन मार्गों से गुजरकर करनी होंगी- इस विषय में वे दोनों आपस में बातचीत किया करते। हालांकि दोनों के विचार एक समान नहीं थे लेकिन देश-सेवा का ध्येय समान था।

शिक्षा

तिलक जी का जन्म सन् 1856 के जुलाई मास की 23 तारीख को रत्नागिरी (महाराष्ट्र) में हुआ। उनका नाम 'केशव' रखा गया। लेकिन उनका उपनाम 'बाल' ही अंत तक प्रचलित रहा। उनके पिता गंगाधर पंत शिक्षा विभाग में नौकरी करते थे। तिलक जी के बचपन के समय उनके पिता सहायक उपशिक्षा निरीक्षक बनकर पुणे आए। तिलक जी की मां की मृत्यु उनके बपचन में ही हो गई थी, इसलिए उनका पालन-पोषण उनकी चाची ने किया।

पुणे आने के बाद तिलक जी हाईस्कूल की पढ़ाई के लिए जाने लगे। छोटी उम्र से ही उनके पिता ने उन्हें बहुत कुछ कंठस्थ करा दिया था। साथ ही साथ संस्कृत और गणित विषयों की भी अच्छी तैयारी करा दी गई थी।

सन् 1872 में तिलक जी के पिता की मृत्यु हो गई। उस समय के रिवाज के अनुसार, अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाई कर रहे तिलक जी की शादी भी कर दी गई थी। यह सन् 1871 की बात है। सोलह वर्ष की उम्र में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद तिलक जी उच्चतर शिक्षा के लिए पुणे के डेक्कन कॉलेज में दाखिल हुए। पिता जी ने उनके

लिए बहुत बड़ी जायदाद तो नहीं छोड़ी थी लेकिन फिर भी जो कुछ रुपये रखे थे, उनसे स्नातक की उपाधि प्राप्त करने तक तिलक जी के सामने कोई कठिनाई पैदा नहीं हुई।

तेज बुद्धि और व्यापक अध्ययन के कारण तिलक जी स्कूल तथा कॉलेज में भी एक बुद्धिमान छात्र के रूप में जाने जाते थे। सन् 1876 में गणित विषय को लेकर तिलक जी ने स्नातक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। बाद में एम. ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर सन् 1879 में उन्होंने वकालत की परीक्षा पास की।

तिलक जी के मित्र आगरकर की हालत कुछ गरीबी की थी लेकिन उन्हें उस बात की परवाह नहीं थी। उन्होंने एक बार अपनी मां को लिखा था- "मां, तुम सोचती होगी कि पढ़-लिखकर तुम्हारा बेटा बहुत बड़ा अफसर बनेगा, उसे अच्छी-खासी तनख्वाह वाली नौकरी मिलेगी और तुम्हारी सारी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी। लेकिन मैं अभी से तुम्हें बता रहा हूं कि मैं सुख का लालची नहीं हूं और भविष्य में अपने गुजारे लायक पैसा अपने पास रखकर, बाकी पैसे का उपयोग मैं दूसरों के हित के लिए ही करूंगा।"

देश की भलाई के लिए क्या करना चाहिए-इस संबंध में इन दोनों युवा मित्रों में कुछ मतभेद थे। तिलक जी को लगता था कि पहले राजनीतिक जागृति करके देश को आजाद कराने के लिए भरसक प्रयत्न करने चाहिए। इसके उलट आगरकर का कहना था कि इसमें कोई संदेह नहीं कि आजादी प्राप्त करना बहुत महत्वपूर्ण बात है, फिर भी पहले सामाजिक कार्यों से समाज में सुधार लाया जाए और बाद में राजनीतिक जागृति की ओर मुड़ा जाए।

तिलक जी गणित के विद्यार्थी थे तो तत्वज्ञान आगरकर जी का प्रिय विषय था। दोनों मित्रों ने पाश्चात्य विद्वानों के विचार पढ़े थे

और मिल तथा स्पेंसर- इन दोनों विद्वानों के विचारों का गहरा प्रभाव तिलक और आगरकर के हृदय पर हुआ था।

अध्यापन कार्य

तिलक जी और आगरकर दोनों को केवल कहने-सुनने में ही आनंद नहीं आता था बल्कि उन दोनों को लगता था कि विचार के अनुसार कर्म भी करना चाहिए। लंबी-लंबी अर्थपूर्ण बहसों के बाद उन दोनों को ऐसा लगने लगा कि राजनीतिक या सामाजिक कोई भी कार्य करने से पहले, शिक्षा का होना सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा ही सभी कार्यों की बुनियाद है। उन दोनों के बीच यह कोई समझौता नहीं था बल्कि उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण फैसला लिया था। इसी निर्णय के नतीजे में 2 जनवरी, 1880 को पुणे में 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना की गई और तिलक जी के जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र में अगले कदम के रूप में 25 अक्टूबर, 1884 को पुणे में डेक्कन एड्युकेशन सोसाइटी की स्थापना की गई और कुछ ही दिनों बाद 2 जनवरी, 1885 को फर्ग्युसन कॉलेज शुरू किया गया। इससे तिलक जी और आगरकर का उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने का सपना कुछ हद तक पूरा हो गया।

अच्छी शिक्षा प्राप्त करके युवा विद्यार्थियों को ज्ञान देना और उनमें ज्ञान के प्रति रुचि जगाना-यह महत्वपूर्ण कार्य तो था लेकिन चिपलूनकर, आगरकर और तिलक जी को केवल अध्यापन के क्षेत्र में काम करने से पूरा संतोष नहीं मिल रहा था।

जन जागृति

अपने देश की स्थिति से आम लोगों को अवगत कराकर उनके हृदय

में देशभक्ति का भाव पैदा करना तथा इस स्थिति में और सुधार लाने के लिए क्या करना चाहिए, इसकी सीख देश के आम आदमी को देने के उद्देश्य से चिपलूनकर, आगरकर और तिलक जी एकजुट हुए थे।

जन जागरण के लिए अखबार एक असरदार माध्यम है, इसका एहसास उन्हें था। इसलिए अखबार शुरू करने के बारे में इन तीनों इरादों के पक्के मित्रों ने विचार-विमर्श शुरू किया अेार शिक्षा के कार्य के दौरान ही तिलक जी और आगरकर ने 'केसरी' और 'मराठा' नाम से दो समाचार पत्र शुरू किए।

'केसरी'

'केसरी' नामक यह मराठी साप्ताहिक अखबार जल्दी ही महाराष्ट्र के कोने- कोने में पहुंचने लगा। आगरकर और तिलक जी के लेखों से जनता को काफी सीख मिल रही थी। राजनीति के सवालों पर इन दो संपादकों में कोई मतभेद न था क्योंकि दोनों आजादी चाहते थे। लेकिन बाद में सामाजिक प्रश्नों को लेकर उन दोनों में कुछ मतभेद उभरने लगे।

आगरकर सामाजिक सुधारों के समर्थक थे तो तिलक जी की भूमिका एक परंपरावादी की थी। इन्हीं मतभेदों के कारण आगरकर ने 'केसरी' के संपादक पद से इस्तीफा दे दिया। बाद में, सामाजिक सुधारों को विशेष स्थान देने के लिए उन्होंने 'सुधारक' नाम से नया अखबार निकाला।

फर्ग्युसन कॉलेज के रोजाना के कामकाज में भी इन दोनों के अलग-अलग विचार सामने आने लगे। आखिरकार तिलक जी ने भी फर्ग्युसन कॉलेज तथा डेक्कन एड्यूकेशन सोसाइटी से इस्तीफा दे दिया और अपना पूरा समय 'केसरी' को देने लगे।

2. उग्र पत्रकार और जुझारू राजनीतिज्ञ

सन् 1890 से 1897 तक के सात वर्षों में देश के और विशेषत: महाराष्ट्र के सामाजिक जीवन में घटी अलग-अलग घटनाओं से तिलक जी को इस बात का पता लगा कि उन्हें पक्के तौर पर क्या करना चाहिए और वे क्या कर सकते हैं। इन घटनाओं में तिलक जी ने जो भूमिका निभाई उसके कारण उनके नेतृत्व को समाज ने मान्यता दी।

इस दौरान सन् 1893 में हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। उस मौके पर तिलक जी ने 'केसरी' में निडरता से स्वाभिमानी और निष्पक्ष रवैया अपनाया। इस संदर्भ में तिलक जी लिखते हैं कि जब हम हिंदू-मुसलमानों के बीच दंगों के कारणों को देखते हैं तब हिंदू और मुसलमान, ये दो ही पक्ष हमारी नजर में आते हैं। लेकिन थोड़ा गहराई से विचार करने पर यह पता चलता है कि हिंदू, मुसलमान और सरकार-इन तीनों पक्षों पर ध्यान दिए बिना, दंगों के कारणों का ठीक से पता नहीं चल पाएगा।

तिलक जी ने साफ-साफ बताया था कि हिंदू और मुसलमान दोनों समुदाय के लोगों को अपने-अपने धर्म के अनुसार व्यवहार करने की छूट होनी चाहिए।

महाराष्ट्र में जहां-जहां दंगे हुए, तिलक जी वहां खुद गए और ब्रितानी कलेक्टरों की मनमानी के उदाहरण उन्होंने खुले रूप में लोगों

के सामने रखे। तिलक जी की इस निडरता से लोगों के मन में उनके लिए आदर की भावना पैदा हुई।

राष्ट्रीय उत्सव

तिलक जी के इस समय के लेख पढ़कर यह जाना जा सकता है कि उनके मन में यह भावना दृढ़ हुई थी कि लोगों से आमने-सामने मिलकर कार्य किए बिना और विभिन्न उपायों से उन्हें संगठित किए बिना राजनीतिक आंदोलन आगे नहीं बढ़ेगा।

इस दिशा में उन्होंने जो कोशिशें शुरू कीं, उनमें प्रमुख था गणपति उत्सव को सार्वजनिक रूप दिया जाना। तिलक जी ने यह ठीक से जान लिया था कि समाज उत्सवप्रिय होता है। इसलिए उनकी ऐसी इच्छा हुई कि समाज की इस आदत को सही दिशा देकर इसे जन जागरण का एक मंच बना दिया जाए।

इस लोक उत्सव में तिलक जी ने पुणे में ऐसी प्रथा डाली कि उसमें मनोरंजन के साथ-साथ लोक-शिक्षण के लिए भी विभिन्न विषयों पर व्याख्यान आयोजित किए जाते थे। महाराष्ट्र के अनेक गांवों में इस प्रथा का चलन हुआ तथा इस प्रकार तिलक जी के द्वारा चाहा गया लोक-शिक्षण मंच का निर्माण होने लगा।

महान राष्ट्रभक्त छत्रपति शिवाजी महाराज का उत्सव शुरू करके तिलक जी ने एक और महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस संबंध में 28 अप्रैल, 1896 के 'केसरी' के 'शिव जयंती का राष्ट्रीय उत्सव' नामक अपने संपादकीय लेख में तिलक जी ने इन शब्दों में अपना मंतव्य प्रकट किया था:

"जिन वीर पुरुषों ने अपने देश का नाम इतिहास में अमर किया है उनके उस कार्य का हम कितना भी अभिनंदन क्यों न करें, हम

उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकते। श्री छत्रपति महाराज का उत्सव करने में उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना ही हमारा उद्देश्य है... राष्ट्र के महापुरुषों को स्मरण करना, राष्ट्रीयता की भावना को जगाए रखने का एक अच्छा माध्यम है... ।"

तिलक जी हमेशा ये बताते रहे कि इस उत्सव में लोगों को आपसी मतभेद भूलकर काम करना चाहिए। अमरावती के भाषण में तिलक जी ने शिवाजी के चरित्र के बारे में अपने विचार इस प्रकार स्पष्ट किए थेः

"जो प्रगति की इच्छा करता है उसे साधु समझना चाहिए, और जो प्रगति में बाधा डालता है उसे दुष्ट। छत्रपति शिवाजी महाराज ने हमारी प्रगति में आड़े आनेवाली कठिनाइयां दूर कर हमारा मार्ग सरल कर दिया। वे अफजल खां को मारना नहीं चाहते थे बल्कि वे प्रगति के मार्ग में आनेवाले संकटों को दूर करना चाहते थे। यदि उसके



मुसलमान होने के कारण वे उसे मारना चाहते तो उसकी बीबी को गहने आदि देकर सम्मानपूर्वक बीजापुर नहीं भेजते...।

"हर एक को जाति या धर्म की ओर न देखकर पूरे राष्ट्र की ओर देखना चाहिए...। इस प्रकार का राष्ट्रीय कार्य अपना कर्तव्य समझकर छत्रपति शिवाजी ने किया। उस समय के लोगों की स्थिति जानकर और संकटों को दूर कर उन्होंने हमें प्रगति की राह दिखाई।"

तत्कालीन समाज में जब कभी तनाव उत्पन्न हुआ, तिलक जी ने निडरता से अपनी भूमिका अदा करके विरोधी पक्ष पर विजय प्राप्त की और नए-नए लोक जागरण के उत्सव शुरू किए। इससे उनकी लोकप्रियता बढ़ी। सन् 1893 से 1895 तक की अवधि में वे पुणे नगरपालिका के पार्षद, मुंबई विद्यापीठ के सदस्य और कायदा कौंसिल के सभासद के पद पर चुने गए।

लोक-शक्ति

सन् 1876-77 में पड़े अकाल के बाद सरकार ने 'फेमिन रिलीफ कोड' पारित किया और उसमें अकाल पीड़ित जनता के लिए सरकार क्या और कैसी मदद करेगी, इसके नियम निश्चित किए गए। उसमें मुख्यतः किसानों को लगान की वसूली में दी जानेवाली सुविधाओं के बारे में बताया गया था। इन नियमों को लागू करने के लिए सरकार मजबूर हो, इस दृष्टि से तिलक जी ने काम करना आरंभ किया। सबसे पहले उन्होंने सरकार से मांग की कि 'फेमिन रिलीफ कोड' का मराठी अनुवाद लोगों को सुलभ कराया जाए।

जब इस मांग को सरकार ने नामंजूर कर दिया तब तिलक जी ने 'फेमिन रिलीफ कोड' का संक्षिप्त अनुवाद 'केसरी' में छापा और उसकी पुस्तिका बनाकर सार्वजनिक-सभा के कार्यकर्ताओं के हाथों

विभिन्न जिलों में उसे बंटवाया। वास्तव में इसमें कोई गैरकानूनी बात नहीं थी, फिर भी इस पुस्तिका के 'कर्ज लेकर लगान मत भरो'- इस वाक्य के आधार पर ठाणे और कुलाबा जिलों के कलेक्टरों ने सार्वजनिक सभा के कार्यकर्ताओं पर मुकदमे दायर किए।

कुलाबा जिले के पेण गांव में सार्वजनिक सभा के कार्यकर्ता प्रा. परांजपे पर मुकदमा दायर किया गया। इसकी जानकारी मिलते ही कांग्रेस के अधिवेशन के लिए कलकत्ता गए हुए तिलक जी तत्काल वापस आए और पेण जा पहुंचे।

यह मुकदमा ब्रूक नाम के मजिस्ट्रेट की अदालत में था। तिलक जी के वहां पेश होते ही अदालत में विशाल जन समुदाय इकट्ठा हो गया और उन्होंने तिलक जी की जय-जयकार के नारे लगाने शुरू किए। पुलिस उस भीड़ को काबू में नहीं कर सकी। तब मजिस्ट्रेट ब्रूक ने तिलक जी से अनुरोध किया। तिलक जी के कहने पर लोग शांत हो गए। इस मुकदमे में प्रा. परांजपे निर्दोष बरी किए गए।

बाद में मजिस्ट्रेट ब्रूक ने तिलक जी को बुलाया और कहा कि अब तक किसी भी मुकदमे में किसान वर्ग के अशिक्षित लोगों की इतनी भारी भीड़ उन्होंने हिंदुस्तान में तो क्या, इंग्लैंड में भी कभी नहीं देखी।

कानून के दायरे में रहकर भी सरकार पर किस प्रकार से अंकुश लगाया जा सकता है, यह तिलक जी ने दिखा दिया था। उन्होंने कहा कि फेमिन रिलीफ कोड की प्रतियां बांटने के जुर्म में यदि सरकार कार्यकर्ताओं पर मुकदमा दायर करती है तो इस कोड को छापने के जुर्म में 'केसरी' के संपादक पर तो दस बार मुकदमा दायर करना चाहिए था।

कानून की सीमा में लिखते समय भी लोगों को निडर बनाने के लिए तिलक जी कैसी तीखी भाषा का प्रयोग करते थे, यह 'केसरी'

के निम्नलिखित अग्रलेख में देखा जा समझा है। तिलक जी लिखते हैं:

"ये दिन जोर-जबरदस्ती के नहीं बल्कि कानून के हैं, इस बात को जनता और सरकारी अमलदार दोनों को ध्यान में रखना चाहिए। यदि ऐसा कानून हो कि फसल का कुछ आर्थिक नुकसान होने पर लगान में छूट मिलेगी तो सरकारी अधिकारियों को लोगों को यह छूट अवश्य देनी चाहिए और लोगों को भी शांति से आग्रहपूर्वक उसे मान लेना चाहिए...। जब एक हाथ में 'फेमिन रिलीफ कोड' और दूसरे हाथ में छूट का नियम तथा उसके अनुसार राजकाज चलाने का निश्चय होगा- उसी स्थिति में अकाल से पीड़ित जनता को न्याय मिलेगा।"

कांग्रेस पार्टी की नरम दल की कार्यपद्धति के अनुसार जब गोपाल कृष्ण गोखले सार्वजनिक सभा के सचिव थे, तब लोगों की शिकायतों के संबंध में सरकार को प्रतिवेदन दिए जाते थे। तिलक जी के नेतृत्व में भी सभा की ओर से ऐसे प्रतिवेदन दिए गए। लेकिन इन प्रतिवेदनों के पीछे तिलक जी ने जनता की ताकत को जगाया और इसी जनशक्ति के सहारे अकाल में सरकार को झुकाया।

तिलक जी ऐसा नहीं मानते थे कि उग्र राजनीति करने का अर्थ है उग्र शब्दों का प्रयोग। तिलक जी के शब्द तीखे और साफ-साफ होते थे। उन शब्दों से लोगों को निडर रहने की सीख दी जाती थी। उनकी दृष्टि में उग्र राजनीति का अर्थ था शब्दों को लोकशक्ति का समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

महामारी का संकट

सन् 1897 में पुणे में प्लेग की महामारी फैली थी। उस समय प्लेग की रोकथाम के लिए कोई इंजेक्शन उपलब्ध नहीं था। इसलिए इस

बीमारी से बहुत-से लोग मर गए। बीमारी को रोकने के लिए महामारी के शिकार मरीजों को अस्पताल में पहुंचाना, उनके घरों की साफ-सफाई करके उन्हें गांव के बाहर खुली और साफ-सुथरी जगह में रहने के लिए भेजने आदि की योजना लागू करने का काम सरकार ने असिस्टेंट कलेक्टर रैंड को सौंपा था और यह काम वह गोरे और काले फौजी सिपाहियों की मदद से बड़ी बेईमानी से कर रहा था।

इन सिपाहियों ने लोगों के घरों से बर्तन बाहर फेंकने, देवी-देवताओं की मूर्तियों को अपवित्र करने जैसे अनेक प्रकार के अनैतिक काम किए। इससे तंग आकर लोग गुस्से से आग- बबूला हो गए। फौजी सिपाहियों ने स्त्रियों के साथ जो गंदा व्यवहार किया उसके खिलाफ महान समाज सेविका पंडिता रमाबाई ने भी आवाज उठाई थी।

आम जनता पर आनेवाली मुसीबत नेता की कसौटी होती है। तिलक जी ने संकट के समय में लोगों को धैर्य बंधाया। उन्होंने शुरू में 'केसरी' में लिखा था- "बंदोबस्त के बारे में बेकार में शंका उठाना नासमझी की निशानी है।" उस समय सरकारी प्रयासों को सहयोग देने की उनकी भूमिका थी, लेकिन बाद में "लोग बीमारी से भी ज्यादा इस जोर-जबरदस्ती से डर रहे हैं" ऐसा लिखकर उन्होंने लोगों की कठिनाइयों को समाज के सामने रखा।

महामारी के मरीजों को अस्पताल में जाना ही चाहिए, ऐसा कहते समय उन्होंने यह भी सोचा कि अगर लोगों को सरकारी अस्पताल में जाने से डर लगता हो तो उनके लिए दूसरे निजी अस्पताल खोलने चाहिए। फिर कुछ लोगों की मदद से उन्होंने स्वयं महामारी के शिकार लोगों के लिए अस्पताल शुरू किया। इसी प्रकार अन्य समस्याओं में भी लोगों की सहायता करने के लिए तिलक जी ने आगे बढ़कर 'रिलीफ कमेटी' (राहत समिति) की स्थापना की।

महामारी का संकट बड़ा भयानक था। इसके बावजूद उस समय तिलक जी निडरता से लोगों के बीच जाकर काम कर रहे थे, उन्हें धीरज दे रहे थे। उन्हें समझा रहे थे कि मरीजों को अस्पताल में अवश्य ही जाना चाहिए। साथ ही सरकार जहां गलती कर रही थी, वहां स्पष्ट रूप से सरकार के कामकाज पर टीका-टिप्पणी भी कर रहे थे।

इस दुख भरे समय में फौजी सिपाहियों द्वारा लोगों की जरूरतों के प्रति लापरवाही बरतने के कारण लोग बहुत नाराज थे। साथ ही वे यह भी जानते थे कि शासन के सामने वे कुछ नहीं कर सकते, इसलिए वे यह अपमान भी सह रहे थे। कुछ युवा भीतर ही भीतर क्रोध में धधक रहे थे। उन्हें लगता था कि इस अन्याय और अपमान के खिलाफ सरकार को सबक सिखाना ही चाहिए और इस दृष्टि से वे तैयारी भी करने लगे।

मई, 1897 के आसपास महामारी का प्रभाव कम होने लगा और दैनिक जनजीवन सुचारु रूप से चलने लगा। 12 जून को शिवाजी के राज्याभिषेक का दिन था। उस दिन प्रवचन और व्याख्यान का कार्यक्रम होना निश्चित था। उसमें इतिहास के प्राध्यापक श्री भानू का भाषण हुआ। उन्होंने अफजल खां के मारे जाने पर भाषण दिया और कहा कि इस घटना के लिए छत्रपति शिवाजी महाराज को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अध्यक्ष के पद से इस बात के समर्थन में बोलते हुए तिलक जी ने अपने भाषण में इस घटना के पीछे शिवाजी महाराज की बुद्धि का उल्लेख किया।

15 जून के 'केसरी' में भानू जी के व्याख्यान का सारांश प्रकाशित हुआ। वास्तव में इस भाषण और इसके एक सप्ताह के बाद घटित घटना का कुछ भी आपसी संबंध नहीं था, लेकिन तिलक जी के बढ़ते

हुए राजनीतिक प्रभाव से घबराई हुई नौकरशाही और ब्रिटिश सरकार उन पर वार करने का मौका ढूंढ़ ही रही थी और इस बहाने सरकार को वह मौका मिल ही गया था। सरकार ने आरोप लगाया था कि तिलक जी के उकसाने पर ही लोगों के मन में राजद्रोह की भावना भड़क उठी है।

रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के 60 साल पूरे हो रहे थे। इस उपलक्ष्य में 22 जून को गवर्नर साहब ने गणेश खिंड पर एक भव्य समारोह और भोज का आयोजन किया था। इस सरकारी भोज में असिस्टेंट कलेक्टर रैंड भी उपस्थित था। दावत के बाद एक-एक करके सभी अधिकारीगण लौटने लगे। अंत में लेफ्टिनेंट आयर्स्ट की घोड़ागाड़ी पर हमला करके एक युवक ने गोली मारी। लेफ्टिनेंट घटना स्थल पर ही मर गया।

उसके पीछे मिस्टर रैंड की सवारी पहुंचते ही दूसरे युवक ने गाड़ी के पिछले हिस्से पर आकर रैंड की पीठ में गोलियां दाग दीं। गोलियां उसके फेफड़ों में घुस गईं और रैंड बुरी तरह तड़पने लगा। उसे तुरंत अस्पताल ले जाया गया। ऐसा कुछ वाकया हो जाएगा, इसका जरा-सा भी अनुमान सरकारी अधिकारियों या पुलिस को नहीं था। इसका कारण यह था कि यह काम करनेवाले युवाओं ने बहुत दिनों से गुप्त रूप से इसकी तैयारी कर रखी थी।

चाफेकर क्लब

पुणे के पास चिंचवड में रहने वाले चाफेकर बंधु, रानाडे और अन्य कुछ जवानों ने मिलकर एक खुफिया संगठन बनाया था। इस संगठन का नाम था चाफेकर क्लब। गुलामी के कारण होनेवाले अपमानों से ये युवक बहुत नाराज थे। उनमें से दामोदर चाफेकर काफी हट्टा-कट्टा

था। वह सेना में भर्ती होना चाहता था किंतु उसे वहां प्रवेश नहीं दिया गया। महामारी के दौरान गोरे सिपाहियों द्वारा ढाए गए जुर्म से दुखी हुए चाफेकर क्लब के युवाओं ने ब्रिटिश सरकार और गोरे अधिकारियों को सबक सिखाने की बात मन में ठान ली थी।

महामारी के संकट में पुणे शहर तबाह हो रहा था और इधर रानी के राजतिलक के हीरक महोत्सव समारोह के उपलक्ष्य में दावत आयोजित की गई थी। इन युवाओं की दृष्टि से यह बात जले पर नमक छिड़कने जैसी ही थी। इसलिए उन्होंने उस रात को रैंड को मौत के घाट उतारने का निश्चय किया। उसी योजना के अनुसार दामोदर चाफेकर ने रैंड को गोली मारी। ले. आयर्स्ट, बालकृष्ण चाफेकर की गोली का शिकार हुआ। गणेश खिंड के सुनसान रास्ते पर रात के समय यह पूर्व नियोजित कार्य करके चाफेकर बंधु दूसरे छोटे रास्ते से निकल गए। रैंड और आयर्स्ट की हत्या एक दिल दहला देने वाली घटना थी। पूरे देश में और विशेषतः पुणे में खलबली मच गई। ब्रिटिश सरकार इन हत्याओं से दहल गई। जांच-पड़ताल के लिए तुरंत विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की गई और हत्यारों को पकड़ने के लिए बीस हजार रुपयों का इनाम घोषित किया गया। अपराधियों का पता लगाने के लिए पुलिस ने लोगों को तंग करना शुरू किया और कई लोगों को पूछताछ के लिए हिरासत में ले लिया गया।

मुंबई के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' अख़बार में ऐसा आरोप लगाया गया कि पुणे के ब्राह्मणों ने ब्रिटिश सरकार को गिराने की साजिश की है। तिलक जी ने 'केसरी' में अग्रलेख लिखकर इस घटना की निंदा की, लेकिन सरकार को इसका भी एहसास दिलाया कि उसकी दमन पूर्ण नीति के कारण अनेक बेकसूर लोग बेवजह परेशान हो रहे हैं।

पुणे के कलेक्टर मिस्टर लैम्ब ने 28 जून को प्रतिष्ठित नागरिकों की एक बैठक बुलाई। उसमें उसने उन लोगों को धमकाया कि सरकार की सत्ता मजबूत है और अपराधियों को ढूंढ़ने के लिए सरकार कोई भी कसर नहीं छोड़ेगी। तब तिलक जी ने साफ-साफ लिखा कि ऐसे मामले में हर एक आदमी को पुलिस की मदद करनी चाहिए। लेकिन साथ-साथ यह भी लिखा कि सत्ता की ताकत की बात लोगों को बताने में लैम्ब साहब ने अपनी उद्दंडता और जबरदस्ती ही प्रकट की है। तिलक जी ने सरकार को संकेत देते हुए लिखा कि "राज्य करने का मतलब केवल बदला लेना नहीं है।" ऐसा अग्रलेख लिखकर उन्होंने जनता का धीरज बढ़ाने के लिए निडर रवैया अपनाया।

रैंड के हत्यारे का पता लगाने के लिए ब्रुइन नाम के एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई। रैंड के हत्यारे और तिलक जी के निकट के संबंध थे, ऐसे सबूत इकट्ठा करके तिलक जी को भी इस मुकदमे में फंसाने की सरकार की चाल थी। सबूत प्राप्त करने के लिए ब्रुइन ने बड़ी कोशिशें कीं लेकिन तिलक जी का चाफेकर बंधु के साथ प्रत्यक्ष संबंध था ही नहीं, इसलिए ब्रुइन को कोई ठोस सबूत नहीं मिल सका। यदि तिलक जी और चाफेकर बंधु में थोड़ा-सा भी संबंध होता तो ब्रुइन उसका पता लगा ही लेता और सरकार तुरंत तिलक जी को गिरफ्तार कर लेती।

राजद्रोह का मुकदमा

तिलक जी ने 'केसरी' में इन हत्याओं की कड़ी निंदा की लेकिन साथ-साथ यह भी लिखा कि हत्या करने के लिए ये युवक क्यों मजबूर हुए? तिलक जी ने महामारी के संकट में ब्रिटिश अधिकारियों

द्वारा की गई बेरहमी और जोर-जबरदस्ती की भी कड़ी निंदा की।

हत्यारों का पता लगाने के लिए जब पुलिस की जोर-जबरदस्ती बढ़ती ही गई तब तिलक जी ने निर्भयता से एक अग्रलेख लिखा। उसका शीर्षक था 'सरकार का दिमाग ठिकाने पर है क्या?' तिलक जी की कलम से निकली इस फटकार से सरकार बौखला गई और 29 जुलाई, 1887 को राजद्रोह के आरोप में तिलक जी को कैद कर लिया गया। राजद्रोह के आरोप में तिलक जी पर सरकार ने मुकदमा दायर किया। आरोप लगाया गया था कि शिवाजी उत्सव में तिलक जी ने जो भाषण दिया उसमें सरकार के खिलाफ लोगों को उकसाना उनका उद्देश्य था।

मुकदमा शुरू होने से पहले कुछ लोगों ने तिलक जी को सलाह दी कि वे सरकार से माफी मांग लें। लेकिन माफी मांगना एक तरह से सरकार की शरण में ही जाना था, इसलिए तिलक जी ने वह सलाह ठुकरा दी। इस बारे में तिलक जी ने अपने मित्र को लिखे पत्र में अपनी राय स्पष्ट की थी। श्री पीयूष कांति घोष ने यह पत्र उद्धृत किया है। तिलक जी ने लिखा था, "विरोधी पक्ष चाहता है कि मैं अपने दोषी होने की बात मंजूर करूं लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं। जनता में मेरा स्थान मेरे स्वाभिमान पर निर्भर है और अगर मैं मुकदमे से कमजोर हो गया, डर गया तो मैं फिर महाराष्ट्र में रहूं या अंडमान में, इसका कोई मतलब नहीं... मुझे ऐसा लगता है कि मेरे ऊपर चलाए जानेवाले राजद्रोह के मुकदमे में कोई दम नहीं है... राजनीति में काम करते हुए जोखिम तो उठाना ही पड़ता है। हमारे काम में यह स्वाभाविक है और मैं इसका सामना करने के लिए तैयार हूं।

"हम सब लोग सेवक हैं और चुनौती के क्षण में यदि हम डरकर

पीछे हट गए तो वह जनता के प्रति विश्वासघात होगा और लोग निराश होंगे... मुझे यदि सजा मिल भी गई तो भी देशवासियों की सहानुभूति मुझे मिलेगी। इस मामले में मेरी यही उपलब्धि होगी।"

ज्यूरी के बहुमत से तिलक जी को दोषी ठहराने के बाद उनसे पूछा गया कि क्या वे कुछ कहना चाहते हैं? इस पर तिलक जी ने कहा, "ज्यूरी को मैं दोषी लगता हूंगा लेकिन मैं खुद को निर्दोष समझता हूं। राजद्रोह के उद्देश्य से मैंने ये लेख नहीं लिखे हैं और मुझे लगता है कि उनका परिणाम भी ऐसा नहीं होगा। लेख के शब्दों के अर्थ के बारे में जाने-माने विद्वानों की सलाह सरकार को लेनी चाहिए थी, लेकिन वह नहीं ली गई।"

इस पर न्यायाधीश स्ट्रैची ने कहा, "मुझे विश्वास है कि पाठकों के मन में सत्ता का विरोध पैदा करने के उद्देश्य से ही आपने ये लेख लिखे हैं। ऐसे बुद्धिमान और होशियार होते हुए आपने ऐसे लेख लिखे, यह बहुत बुरी बात है... मैं आपको केवल 18 महीनों की सजा का हुक्म देता हूं।"



तिलक जी पर चल रहे मुकदमे से देशवासी व्याकुल हो गए थे। जिस दिन मुकदमे का फैसला सुनाया जानेवाला था उस दिन मद्रास (चेन्नई) शहर में क्या हुआ, इसका विवरण 'हिंदू' अखबार में इस प्रकार दिया गया था-

"तिलक जी के मुकदमे के फैसले के दिन दोपहर से ही बड़ी संख्या में लोग 'हिंदू' के कार्यालय के सामने जमा हो गए थे और तिलक जी के बारे में क्या समाचार आता है, इसका बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। जब तिलक जी को सजा मिलने का तार आया तब लोगों के चेहरों पर जो दुख और चिंता व्यक्त हुई, उसका वर्णन करना भी मुश्किल है।"

पूरे देश की जनता को लगा कि तिलक जी को हुई सजा एक राष्ट्रीय शोक की बात है। सन् 1897 के अमरावती के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सी. शंकरन नायर ने तिलक जी का आदरपूर्वक उल्लेख करके इस बात पर कड़ी आपत्ति व्यक्त की कि तिलक जी को जेल में एक राजनैतिक बंदी न मानकर, एक अपराधी माना जाता है। इसी अधिवेशन में बाबू सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने भावपूर्ण स्वर में कहा कि "तिलक जी को हुई सजा के लिए सारा देश आंसू बहा रहा है।" उस सभा में सभी प्रतिनिधियों ने खड़े होकर तिलक जी के प्रति सम्मान प्रकट किया।

डेढ़ साल की सजा भुगतते हुए जेल के खराब भोजन व कठोर जीवन के कारण तिलक जी का स्वास्थ्य दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा था। वजन कम हो रहा था। लेकिन वे खुशदिल व्यक्ति थे।

कठोर कारावास के दौरान भी तिलक जी की ज्ञान पाने की इच्छा लगातार जागृत रही। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान प्रो. मैक्सम्युलर ने अपने द्वारा संपादित 'ऋग्वेद' की प्रति तिलक जी को भेजी थी। तिलक जी

ने गहराई से ऋग्वेद का अध्ययन किया था। मैक्सम्युलर द्वारा प्रस्तुत कुछ ऋचाओं का अर्थ उन्हें सही नहीं लग रहा था।

'सूर्योदयात् प्राक् बहूनि अहानि आसून'- इस श्लोक पर स्वतंत्र रूप से विचार करते हुए तिलक जी के मन में यह कल्पना आई कि 'सूर्योदय हुए बहुत दिन बीत गए'- इस अर्थ से ऐसा लगता है कि यह ऋचा उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में लिखी गई होगी, क्योंकि वहां छह महीनों का दिन और छह महीनों की रात होती है। तिलक जी के मन में यह विचार दृढ़ हुआ कि अपने आर्य पूर्वजों का मूल स्थान उत्तरी ध्रुव के आस-पास ही होगा। तब वहीं पर उन्होंने इस विषय में आगे शोध कार्य करके ग्रंथ लिखने का संकल्प किया।

सभी भारतीयों को लगता था कि निर्दोष तिलक जी को रिहा किया जाना चाहिए। उनकी रिहाई के लिए जो निवेदन सरकार के पास भेजा गया था, उस पर दस्तखत किए थे प्रो. मैक्सम्युलर, सर विलियम हंटर और देश के अन्य कुछ विद्वानों ने। प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार रमेश चंद्र दत्त ने भी उस निवेदन पर दस्तखत किए थे।

इस निवेदन में तिलक जी की विद्वता की तारीफ करते हुए लिखा गया था कि "तिलक जी ने ओरायन पर जो निबंध लिखा है उससे जाहिर है कि वे एक बड़े विद्वान हैं और हजारों वर्ष पूर्व की बातों में उनकी बड़ी दिलचस्पी रही है।" तिलक जी जैसे संस्कृत भाषा के पंडित और शोधकर्त्ता को अधिक समय तक जेल में न रखा जाए- ऐसी विनती मैक्यम्युलर और सहयोगियों ने ब्रिटिश सरकार से की थी।

11 महीने की जेल काटने के बाद 6 सितंबर, 1898 को तिलक जी रिहा हो गए। जेल में उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था। उनका वजन 135 पौंड से गिरकर 105 पौंड तक आ गया था। बाद में

स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हुआ तो वजन 113 पौंड हो गया। रिहाई के बाद आराम करने के लिए वे कुछ समय तक सिंहगढ़ में जाकर रहे।

सिंहगढ़ स्थान उन्हें बहुत प्रिय था। छत्रपति शिवाजी के काल में शहीद हुए तानाजी मालुसरे के बलिदान के कारण पवित्र हुई सिंहगढ़ की भूमि पर तिलक जी को बड़ा गर्व था। पुणे में निरंतर लोगों की भीड़भाड़ में और 'केसरी' के संपादकीय काम के साथ-साथ अन्य सार्वजनिक कामों के झमेले में भी तिलक जी का पढ़ना-लिखना चलता ही रहता था लेकिन सिंहगढ़ में तो उन्हें मनचाही शांति मिलती थी। सिंहगढ़ की खुली हवा और शांत माहौल में तिलक जी को पढ़ने-लिखने के लिए काफी समय मिलता था। इसके अलावा सिंहगढ़ के आसपास के सीधे-सादे देहाती लोगों के साथ बातें करने से भी उनका दिल बहल जाता था। इसलिए कुछ ही दिनों में वहां उनका स्वास्थ्य सुधर गया।

ब्रिटिशों के वफादार अखबार

तिलक जी को सजा की अवधि पूरी होने के पहले ही छोड़ दिया गया था- यह बात 'टाइम्स' जैसे एंग्लो-इंडियन अखबार को जंची नहीं। उधर एक घटना और घटी। तिलक जी की रिहाई के बाद रैंड की हत्या के संदर्भ में सरकार को अपराधियों की जानकारी देनेवाले द्रविड़ बंधुओं की, क्रांतिकारी वासुदेव चाफेकर और रानाडे द्वारा हत्या कर दी गई। वस्तुतः इस घटना से तिलक जी का कुछ भी संबंध नहीं था लेकिन एंग्लो-इंडियन अखबार लिखते ही रहे कि यह तिलक जी की उकसाने वाली सीख का ही नतीजा है और तिलक जी का इन हत्याओं से संबंध जरूर है।

इसी समय लॉर्ड नॉर्थकोट की नियुक्ति मुंबई क्षेत्र के गवर्नर के

रूप में हुई। उन्हें मानो सावधान करने के बहाने इंग्लैंड के कंजरवेटिव पक्ष के 'ग्लोबं' नामक समाचार पत्र ने 28 अक्टूबर के अंक में प्रकाशित लेख में लिखा-

"मुंबई इलाके में राजद्रोही दलों का जाल फैला हुआ है। उनके नेता तिलक को जेल में रखने से आंदोलन का जोर कुछ कम हुआ महसूस हो रहा है, लेकिन असल में वह आंदोलन खत्म हो गया है।" उनका कहना था कि शायद तिलक ने यह आंदोलन न भी छेड़ा हो, फिर भी हत्यारों को उनकी सलाह मिलती रहती है। उन्होंने नए गवर्नर को सलाह दी थी कि इस मीठी जुबान वाले ब्राह्मण को नजरअंदाज न किया जाए बल्कि उस पर कड़ी निगाह रखी जाए।

'ग्लोब' का यह लेख इंग्लैंड के लोकमत के रूप में 'टाइम्स' ने अपने 18 नवंबर, 1899 के अंक में प्रकाशित किया। तत्काल ही 23 नवंबर को तिलक जी ने 'टाइम्स' पर मानहानि का दावा कर दिया। फिरोजशाह मेहता तिलक जी के वकील थे। राजद्रोह के मुकदमे के समय एडवोकेट जनरल ने ऐसी राय प्रकट की कि तिलक जी का रैंड की हत्या से कोई संबंध नहीं था। इसी का आधार लेकर श्री मेहता नें तिलक जी के पक्ष का जोरदार समर्थन किया।

इसी बीच मुकदमा दायर होने की खबर मिलते ही 'टाइम्स' ने दूसरे ही दिन के अंक में माफी मांग ली। उन्होंने इस क्षमा पत्र में लिखा कि इस प्रकरण में 'ग्लोब' का और हमारा मत एक नहीं है। यह लेख निराधार और अन्यायपूर्ण है और इसे छापने का हमें खेद है। इस प्रकार 'टाइम्स' को सार्वजनिक तौर पर खेद व्यक्त करना पड़ा। तिलक जी ने इंग्लैंड के 'ग्लोब' अखबार पर भी मुकदमा दायर किया। 'ग्लोब' ने शुरू में आनाकानी की लेकिन आखिर उन्हें भी माफी मांगनी पड़ी।

24 नवंबर, 1900 के 'केसरी' के अंक में इस माफी की बात को बड़े-बड़े अक्षरों में छापा गया। तिलक जी की इस नैतिक विजय से उनकी राजनीतिक हैसियत बढ़ी और उनके प्रति जनता का प्रेम सौ गुना बढ़ गया।

सन् 1900 के लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में तिलक जी उपस्थित थे। वहां जब वे मंच पर आए तब लोगों ने खड़े होकर तालियों की गड़गड़ाहट की और उनका जय-जयकार किया। तिलक जी की देशभक्ति, उनकी निडर व जुझारू प्रवृत्ति, तेज बुद्धि, आदर्श चरित्र और असीम स्वार्थत्याग के कारण केवल महाराष्ट्र की जनता ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय जनता ने उनके नेतृत्व को मान्यता दी। इसीलिए आगे चलकर वे 'लोकमान्य तिलक' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आजादी के चार सूत्र

तिलक जी की मान्यता थी कि आजादी की लड़ाई की तैयारी सभी उपायों से करनी चाहिए। पूरे विश्व के जनसमूह पर प्रभाव डालनेवाले और भारतीयों को देशभक्ति की प्रेरणा देनेवाले स्वामी विवेकानंद, इंग्लैंड में भारत की ओर से अपना जोरदार पक्ष प्रस्तुत करनेवाले गोखले और क्रांति की पूर्व स्थितियों की तैयारी करनेवाले श्यामजी कृष्ण वर्मा-इन सभी के कार्यों का महत्व तिलक जी जानते थे। विभिन्न मार्गों के द्वारा आजादी के लिए चल रहे प्रयासों को तिलक जी का दिल से समर्थन प्राप्त था। आजादी का ध्येय प्राप्त करने के लिए 'साधनानाम् अनेकता' का सूत्र अपनाना चाहिए, यही उनका मूलमंत्र था।

तिलक जी को लगता था कि आजादी की लड़ाई तीव्र होनी चाहिए, और उन्हें वाइसराय लॉर्ड कर्जन के जुल्मों के कारण वैसा

करने का मौका भी मिल गया। लॉर्ड कर्जन एक उग्र विदेशी शासक था और भारत के प्रति उसके दिल में बड़ी घृणा थी। सन् 1900 के अंत में उसने भारत में तैनात मंत्री को जो खत लिखा था उसमें ऐसी शेखी बघारी थी कि "कांग्रेस पार्टी अब टूट रही है और मेरी यह महत्वाकांक्षा है कि जब तक मैं भारत में हूं, कांग्रेस शांति से दम तोड़ दे। और मैं इसके लिए प्रयत्नशील रहूं।"

सत्ता के विस्तार के जुनून में अंधा होकर कर्जन ने लोगों पर एक के बाद एक जुल्म ढाए। तिलक जी को लगा कि इस जुल्म की चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। इसलिए उन्होंने निडरता से कर्जन का सामना करना शुरू किया। 15 अगस्त, 1905 को तिलक जी ने 'केसरी' में 'आपातकालीन समय' शीर्षक से तेजस्वी अग्रलेख लिखा। कर्जन ने बंगाल का बंटवारा करने का ऐलान किया था। उसके संदर्भ में ही यह अग्रलेख था।

तिलक जी लिखते हैं : "लॉर्ड कर्जन पूरे हिंदुस्तान में रावण की तरह अकेला ही मनमौजी होकर नाचना चाहता है... संपत्ति और सत्ता के अभिमान से उसकी अक्ल पर इतना जबदरस्त पर्दा पड़ा हुआ है कि किसी झूमते हाथी की तरह वह बंगाली क्षेत्र के लोकमत को घास की तरह कुचल रहा है।"

जनता की आवाज तीखी होनी चाहिए, यह विचार प्रकट करते हुए तिलक जी आगे लिखते हैं : "नाक दबाए बिना मुंह नहीं खुलता। अतः जब तक हम सरकार को चुभने वाली कोई बात नहीं कहते तब तक सरकार का घमंड दूर नहीं होगा।" अग्रलेख के अंत में तिलक जी ने यह सलाह दी थी कि बंगाल के नेताओं को अब केवल भाषणों से ही संतुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि ऐसा कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए जिससे सरकार झुक जाए।

22 अगस्त को लिखे अग्रलेख में, अगला कदम क्या होगा- इस संबंध में तिलक जी ने स्पष्ट बताया है। उन्होंने लिखा : "मनमानी करनेवाले क्रूर अधिकारियों की आंखें खोलने के लिए उनकी या विलायत के शासकों की मिन्नतें करने के बजाय हमें अधिक कड़वे इलाज करने चाहिए... राष्ट्रीय बहिष्कार, यह उनमें से ही एक इलाज है।"

इटली, चीन और अमरीका-इन तीन राष्ट्रों ने बहिष्कार के शस्त्र का किस प्रकार से इस्तेमाल किया, यह बताकर तिलक जी लिखते हैं: "जनता कितनी भी दुर्बल क्यों न हों मगर धैर्य, एकजुटता और आत्मनिर्भरता से बिना शस्त्र के भी वह कितनी भारी पड़ती है, यह बात इतिहास से देखी जा सकती है।"

राजनीतिक आंदोलन ओछी हरकतों से नहीं चलता, हर कदम बड़ी सावधानी से आगे बढ़ाना होता है, यह बात तिलक जी को पता थी। बहिष्कार का कार्यक्रम अपनाने के बाद इस हथियार का इस्तेमाल किस प्रकार करना होगा, यह बताने के लिए तिलक जी ने 'बहिष्कार-योग' शीर्षक लेख लिखा। इस अग्रलेख का मुख्य सूत्र था- विलायत में बने माल का बहिष्कार करना। यह कोई चार दिनों का आंदोलन नहीं बल्कि एक 'योग' है और इसमें भगवद्गीता की तरह लोगों को 'योगः कर्मसु कौशलम्' का अनुसरण करना चाहिए।

बंगाल का बंटवारा

16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का बंटवारा किया गया। राजनीतिक दृष्टि से बंगाल एक जागरूक प्रांत था और उसके बंटवारे के लिए वहां की जनता ने सख्त विरोध किया था। सरकार ने बताया कि राज्य के कामकाज की सुविधा के लिए यह बंटवारा किया गया है,

लेकिन बंगाल के नेताओं ने कर्जन की इस दुष्ट चाल को तुरंत पहचान लिया था।

बंगाली लोगों की एकता पर हमला करके वहां के हिंदू और मुसलमानों में हमेशा के लिए दरार पड़ जाए, इस उद्देश्य से ही कर्जन ने यह कुटिल साजिश रची थी। पश्चिम बंगाल में हिंदू ज्यादा थे तो पूर्व बंगाल में मुसलमान। कर्जन ने पूर्व बंगाल के अपने दौरे में जो भाषण दिए उनसे उसका दुष्ट मंतव्य साफ-साफ प्रकट हुआ।

ब्रिटिश साम्राज्य को सदा के लिए बनाए रखने के उद्देश्य से कर्जन ने 'तोड़ो और राज करो' की कुटिल नीति को अपनाया लेकिन इसमें वह कामयाब नहीं हुआ। कर्जन को लगता था कि बंटवारा करने से बंगाल में दरार पड़ेगी, किंतु सब कुछ उसकी इस धारणा के विपरीत ही हुआ। पूरा बंगाल बंटवारे के खिलाफ एकजुट होकर आंदोलित हो उठा। बंगाली जनता ने एकजुट होकर बंटवारा विरोधी आंदोलन को अधिक तीव्र किया।

बहिष्कार

बंगाल के बंटवारे का निर्णय होने के पहले ही 7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता में एक बहुत बड़ा प्रदर्शन हुआ। उस भारी जनसभा में ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया और भावी कार्यक्रम के लिए तैयारी समिति भी बनाई गई। इस आंदोलन में बंगाल के सभी वर्गों के लोग शामिल हुए।

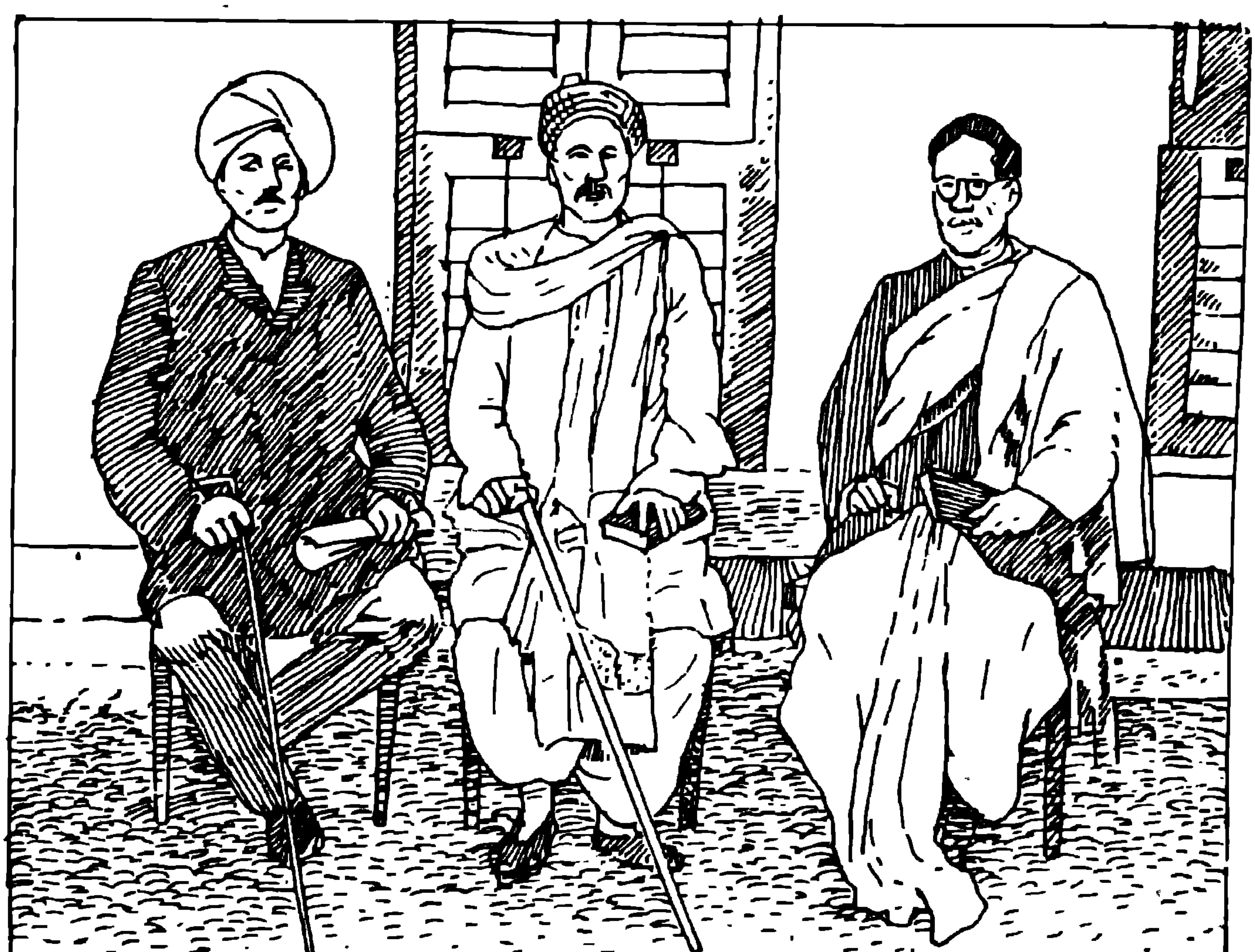
लाल, बाल और पाल

यह हो सकता था कि यह आंदोलन बंगाल तक ही सीमित रहता लेकिन उसे व्यापक स्वरूप देने की दूरदृष्टि कुछ नेताओं ने दिखाई।

तिलक जी और लाला लाजपतराय ने पूरे देश के लोगों में यह एहसास जगाया कि बंगाल का बंटवारा केवल स्थानिक प्रश्न नहीं है बल्कि यह भारतीय जनता के स्वाभिमान पर किया गया हमला है।

इस देशव्यापी आंदोलन का सफल नेतृत्व करने के कारण ही लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और बिपिनचंद्र पाल (लाल-बाल-पाल)- यह त्रिमूर्ति भारत की राजनीति में बड़ी तेजी से जगमगाने लगी।

भारत जैसे विभाजित देश में किसी भी आंदोलन को देश के कोने-कोने तक पहुंचाना कोई आसान बात नहीं थी। लोगों के गुस्से को अपनी दूरदृष्टि से उचित दिशा देने का निश्चय तिलक जी ने किया और स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य- यह चार सूत्री कार्यक्रम देश के सामने रखकर लोगों को आंदोलन में योगदान देने की प्रेरणा दी।



लाल-बाल-पाल इन तीन नेताओं की कोशिशों के कारण ही स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रमों को गति मिली। लाला लाजपतराय ने कहा, "स्वदेशी का आंदोलन अपने देश को मुक्त कराने का मार्ग है, ऐसा मैं मानता हूं। स्वदेशी के आंदोलन से ही हम आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनेंगे। स्वदेशी के मार्ग पर चलने के लिए हमें अपने देश की पूंजी, साधन, सामग्री, जन बल, श्रम और अन्य सभी शक्तियों को इकट्ठा करना होगा। तभी हम अपने देश के हित की रक्षा कर सकेंगे।"

बहिष्कार का समर्थन करते वक्त लोकमान्य तिलक और बिपिनचंद्र पाल कहते थे कि "ब्रिटिश माल का बहिष्कार करना हमारा पहला कदम है। इस मार्ग पर चलते-चलते हमें ब्रिटिश शासन का भी बहिष्कार करना चाहिए।"

बहिष्कार के आंदोलन की शुरुआत एक प्रदर्शन से हुई। बंगाल के लोगों ने मैनचेस्टर में बने कपड़ों के गट्ठों का ढेर लगाकर, सार्वजनिक स्थान पर उसकी होली जलाई। युवकों के मन पर इस प्रदर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा।

विदेशी कपड़ा विदेशी सत्ता का प्रतीक है- यह बात युवकों के हृदय में उतर गई और उन्होंने यह जान लिया कि ब्रिटिश कपड़ों की होली जलाना ब्रिटिशों की सत्ता नष्ट करने की शुरुआत है।

स्वदेशी

तिलक जी, लाजपतराय और पाल बाबू- इन्होंने यह जान लिया था कि जनता का असंतोष केवल नकारात्मक ढंग से व्यक्त होकर नहीं चलेगा। इसलिए उन्होंने स्वदेशी का जोरदार समर्थन किया। कुछ ही समय में 'स्वदेशी' केवल एक नारा ही नहीं रहा बल्कि एक आंदोलन

बन गया। कपड़ों की मिलें, साबुनों, माचिसों के कारखाने और राष्ट्रीय बैंक स्थापित करने के लिए पूंजी जमा की जाने लगी।

राष्ट्रीय शिक्षा के लिए नई शिक्षण संस्थाएं शुरू की गईं। इन संस्थाओं में राष्ट्रीय विचारों के संस्कार देते हुए तकनीकी शिक्षा की सुविधा भी उपलब्ध कराई गई। शिक्षा के जरिये, छात्रों का चरित्र निर्माण करने और साथ-साथ उनकी सेहत भी मजबूत बनाए रखने के ध्येय से प्रेरित होकर कई युवकों ने शिक्षक का पेशा अपनाया।

बंगाल के बंटवारे के खिलाफ जो आंदोलन छेड़ा गया था वह केवल बंगाल तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, वह देशव्यापी होना चाहिए, ऐसी तिलक जी की धारणा थी। उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि विषयों पर अग्रलेख लिखकर जनता को प्रेरणा दी और महाराष्ट्र में स्वदेशी के कार्यक्रम की नींव पक्की करने के लिए कई उपक्रमों को प्रोत्साहन दिया।

सन् 1906 में पंढरपुर में कार्तिकी यात्रा के अवसर पर एक बहुत बड़ा स्वदेशी मेला और प्रदर्शन आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में तिलक जी सबसे आगे थे। स्वदेशी का संदेश कस्बों-देहातों तक पहुंचाना तिलक जी का लक्ष्य था।

रचनात्मक कार्यक्रम में राजनीतिक मतभेद न हों इसलिए इस अवसर पर नरम दल के नेताओं को भी बुलाया गया। अतः तिलक जी के साथ-साथ गोखले भी इस मेले और प्रदर्शन के उद्घाटन समारोह में उपस्थित रहे।

तिलक जी ने मुंबई के प्रमुख व्यापारी और उद्योगपतियों को बुलाकर उनकी मदद से 'स्वदेशी को-ऑपरेटिव स्टोर्स' नाम से एक लिमिटेड कंपनी शुरू की। इस कार्य हेतु पूंजी जमा करने के लिए तिलक जी कई मिल मालिकों से मिले और उन्होंने ढाई लाख रुपये

की पूंजी जमा की। कंपनी के पहले संचालक मंडल में तिलक जी के साथ-साथ रतन टाटा, द्वारका दास धरमसी, खटाव मकनजी आदि लोग थे।

पैसा फंड

स्वदेशी के आंदोलन से इसके पूर्व से स्थापित कुछ उपक्रमों को भी मजबूती मिली। महाराष्ट्र में पैसा फंड का उपक्रम इस प्रकार का था- हर एक व्यक्ति से एक-एक पैसा लेकर उसमें से कुछ उद्योग करने की कल्पना थी। इस उपक्रम में अधिकाधिक लोगों को स्वदेशी के आंदोलन में शामिल करने के उद्देश्य से तिलक जी ने इस 'पैसा फंड' योजना को बढ़ावा दिया। उनकी प्रेरणा से कई युवकों ने पैसा फंड जमा करने में काफी उत्साह दिखाया।

सन् 1905 के दिसंबर माह में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन के समय स्वदेशी की एक प्रदर्शनी आयोजित की गई और तिलक जी की अध्यक्षता में स्वदेशी के प्रचार की सभा भी संपन्न हुई।

राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय सभा के बनारस के इस अधिवेशन में राष्ट्रीय शिक्षा और बनारस हिंदू विद्यापीठ के कार्यों को गति मिली। पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपनी हिंदू यूनिवर्सिटी की कल्पना प्रस्तुत की और तिलक जी ने उसे समर्थन दिया। इस विद्यापीठ को शुरू करने के लिए उन्हें नौ लाख रुपयों का चंदा प्राप्त हुआ। इस अधिवेशन में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से तिलक जी का व्याख्यान भी हुआ।

तिलक जी ने इस अधिवेशन में सुझाव दिया कि हिंदुस्तान में कई भाषाएं हैं, फिर भी सभी लोग देवनागरी लिपि का ही इस्तेमाल करें।

दक्षिण भारत में यह सुधार तुरंत अमल में लाना संभव नहीं होगा, फिर भी कम से कम प्राथमिक स्कूल की पुस्तकें देवनागरी लिपि में छापी जाएं। इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा की कल्पना पूरे देश में फैल गई। सन् 1906 से कलकत्ता में राष्ट्रीय कॉलेज और स्कूल शुरू किया गया और ऐसी घोषणा की गयी कि राष्ट्रीय शिक्षण मंडल की ओर से परीक्षाएं आयोजित करके उपाधियां प्रदान की जाएंगी।

पुणे में महाराष्ट्र विद्या प्रसारक नाम की संस्था बनी और उसकी ओर से तलेगांव में समर्थ विद्यालय शुरू करने का निर्णय लिया गया। तिलक जी से प्रेरणा लेकर प्रा. विजापूरकर ने इस काम में अपने आपको समर्पित कर दिया। तिलक जी ने शिक्षा की व्यापक परिभाषा लोगों को बताई- 'जिससे राष्ट्रीय मनोवृत्ति जागृत होती है, वही होती है सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा।'

3. अग्नि परीक्षा

एक ओर देश की जनता विदेशी सरकार के जुल्म के खिलाफ एकजुट हो रही थी तो दूसरी ओर कांग्रेस में गरम और नरम दल में आपस में मतभेद होने लगे और कांग्रेस में फूट पड़ने के आसार नजर आने लगे।

गरम और नरम दल

सन् 1907 के दिसंबर माह में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के लिए अलग-अलग प्रांतों से जो प्रतिनिधि आए थे उन्हें आगे क्या होगा, इसका अंदाज तो नहीं था लेकिन कांग्रेस में फूट पड़ने का भय कई लोगों के मन में जरूर था।

23 दिसंबर को तिलक जी सूरत आए। उस दिन शाम की सभा में उन्होंने कहा, "मैं राष्ट्रीय सभा में फूट डालना नहीं चाहता। मुझे झगड़ा भी नहीं करना है लेकिन कलकत्ता में पारित हुए प्रस्तावों के संबंध में हम कोई समझौता नहीं करेंगे, यह मेरा निश्चय है।"

आखिरकार सूरत का अधिवेशन तितर-बितर हो गया। गरम और नरम दल के आपसी मतभेद बहुत बढ़ गए और कांग्रेस में फूट पड़ गई।

पहला बम विस्फोट

तिलक जी ने युवा क्रांतिकारियों को दुस्साहसी काम न करने की

सलाह दी थी लेकिन युवा दिलों पर जब कोई बात हावी हो जाती है तब वह विवेक का हरण कर लेती है। बंगाल में वैसा ही हुआ। किंग्सफोर्ड नामक न्यायमूर्ति ने बंगाल के बंटवारे के आंदोलन के दिनों में कई युवकों को कोड़ों की सजा दी थी, इसलिए क्रांतिकारी युवाओं को ऐसा लगता था कि यदि इसी प्रकार हम भी किंग्सफोर्ड को सबक सिखाएं तो दूसरे जुल्मी अधिकारियों के मन में आतंक पैदा होगा।

इन जवान क्रांतिकारियों के हाथ में एक नया हथियार आया था। यूरोप में बम की विद्या सीखकर क्रांतिकारी श्री पां. म. बापट बम तैयार करने का मैन्युअल लेकर भारत आए और इसी मैन्युअल की एक प्रति बंगाल के क्रांतिकारियों के हाथ लगी।

अरविंद घोष, उनके भाई बीरेन्द्र घोष तथा इनसे प्रेरणा प्राप्त किए हुए क्रांतिकारी युवक कलकत्ता के मानिकतल्ला नामक स्थान पर इकट्ठे होते थे।

इन युवाओं में उल्हासकर दत्त नाम के एक उग्रवादी क्रांतिकारी भी थे। उन्होंने अपने सहयोगियों की मदद से मैन्युअल के अनुसार बम तैयार किया। यह बम किंग्सफोर्ड पर फेंकने का उनका इरादा था। यह जिम्मेदारी खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चक्रवर्ती को सौंपी गई।

30 अप्रैल, 1908 को मुजफ्फरपुर में खुदीराम और प्रफुल्लकुमार द्वारा बम फेंकने की योजना निश्चित की गई। लेकिन कार को पहचानने में गलती हुई और खुदीराम बोस द्वारा फेंके हुए बम से अन्य कार में बैठी हुई दो अंग्रेज महिलाएं मारी गईं। जब पुलिस उनका पीछा करने लगी तब प्रफुल्लकुमार चक्रवर्ती ने खुद पर गोली चलाकर आत्महत्या कर ली।

खुदीराम बोस ने गिरफ्तार होने के बाद निडरता से अपना जुर्म

कुबूल किया और किंग्सफोर्ड के बदले दो महिलाओं की नाहक हत्या के लिए खेद व्यक्त किया। उसे फांसी की सजा दी गई।

खुदीराम बोस हंसते-हंसते फांसी के फंदे तक गया और मृत्यु को गले लगाते समय उसने 'वंदे मातरम्' का जयघोष किया। भारत में यह पहला बम विस्फोट था जिससे ब्रिटिश सरकार दहल गई और फिर क्रांतिकारियों की धर-पकड़ के लिए सरकार का दमन चक्र पूरी तेजी से चलने लगा।

मुजफ्फरपुर में जो बम विस्फोट हुआ उसकी प्रतिक्रिया पूरे देश में हुई। इस विषय पर तिलक जी ने 'केसरी' में 12 मई को 'देश का दुर्दैव' शीर्षक अग्रलेख लिखा। इसमें हिंसा की कड़ी निंदा की गई लेकिन उसके साथ-साथ उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि लोगों की आजादी की आकांक्षा को दबाने के कारण ही यह हिंसा भड़क उठी है।

इसके बाद 'केसरी' के प्रसिद्ध अग्रलेख तिलक जी के सहयोगी कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर ने लिखे थे। वे इस प्रकार थेः दोहरा इशारा, बम गोले का सच्चा अर्थ और बम गोले का रहस्य। 9 जून के अंक में 'ये इलाज टिकाऊ नहीं है' भी ऐसा ही प्रसिद्ध अग्रलेख था।

पुणे के अन्य अखबार 'काल' में उसके संपादक श्री शिवराम महादेव परांजपे ने भी अग्रलेख लिखे। 11 जुलाई, 1908 को परांजपे जी को गिरफ्तार किया गया। इसके बाद तिलक जी को भी गिरफ्तार किया जा सकता है, इसका पूर्व अनुमान उन्हें था। अगले दिनों में जो अग्नि परीक्षा उन्हें देनी थी, उसके लिए उनका मन तैयार ही था।

24 जुलाई, 1908 को शाम छह बजे तिलक जी को मुंबई के सरदार गृह में राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया और डोंगरी के जेल में भेज दिया गया।

इस मुकंदमे में न्यायालय के सामने अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हुए तिलक जी ने कानून के अनेक पहलुओं पर मौलिक रूप से टिप्पणी की। उन्होंने अपने देशवासियों के सामने भी आजादी की लड़ाई में अपनी नैतिक भूमिका स्पष्ट रूप से रखी।

स्वराज्य प्राप्त करना एक उदात्त ध्येय है और उसके लिए वे जिंदगी भर लड़ते रहे। इस बात के लिए तिलक जी को संतोष था। लेकिन इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए भारतीय जनता को बड़ा आंदोलन करना पड़ेगा, इसका भी एहसास उन्हें था। उन्हें मन ही मन लग रहा था कि यदि मैं विपत्तियों का सामना कष्ट उठाकर, निडरता से करूंगा तो ही देशवासियों को मुझसे प्रेरणा मिलेगी। इसलिए सरकार द्वारा दायर किए हुए मुकदमे से किसी तरह छुटकारा पा लेने का विचार उनके मन में कभी नहीं आया।

उस समय पूरा देश ही एक बड़ी जेल में बदल गया था। अतः इस छोटी जेल में सरकार द्वारा कैद किए जाने पर तिलक जी को कोई दुख नहीं महसूस हो रहा था।

तिलक जी को अपराधी के रूप में न्यायालय के सामने खड़ा कर दिया गया था। लेकिन तिलक जी पूरी दुनिया को यह बताना चाहते थे कि ऊंचे सिंहासन से अत्याचार को प्रोत्साहन देनेवाले और भारत की बदनामी करनेवाले एंग्लो-इंडियन एक पत्रकार और लोगों की स्वाभाविक राजनीतिक आकांक्षा को कुचलने वाले ये ब्रिटिश शासनकर्त्ता ही असली दोषी हैं। तिलक जी इस सत्य को दुनिया के सामने लाना चाहते थे कि भारत के समाचार-पत्रों को जनता को राजनीतिक शिक्षा देने का बुनियादी हक है और विदेशी सत्ता को इस हक को छीनने का कोई अधिकार नहीं है।

न्यायमूर्ति दावर ने ज्यूरी को संबोधित करके, सबूत-गवाहों को

न्यायमूर्ति दावर ने ज्यूरी को संबोधित करके, सबूत-गवाहों को ध्यान में रखकर दोनों पक्षों की बहस का समापन किया। न्यायमूर्ति दावर का यह भाषण रात 8 बजे तक चलता रहा था।

उसके बाद 8 बजकर तीन मिनट पर ज्यूरी के लोग विचार-विमर्श करने के लिए अपने कमरे में गए। तब अदालत का माहौल बड़ा गंभीर हो गया था।

न्यायमूर्ति दावर के कथन से यह स्पष्ट लगा था कि तिलक जी को बड़ी लंबी सजा होगी। इसलिए दादा साहब खापर्डे, तात्या साहब केलकर और अन्य लोग बहुत चिंतित हो गए थे।

इस बीच तिलक जी कटघरे से बाहर आकर अपने मित्रों से बातें करने लगे। इतनी छूट उन्हें दी गई थी। खिलखिलाकर हंसते हुए तिलक जी ने कहा, "दादा साहब, आज का रंग कुछ और ही लगता है। ज्यादा से ज्यादा काले पानी की सजा होगी। शायद हमारी यह आखिरी चाय ही होगी।" उनका यह मनोबल देखकर सभी लोग चकित रह गए और वहां का वातावरण एक क्षण के लिए एकदम प्रसन्नता से भर उठा।

9 बजकर बीस मिनट पर ज्यूरी के सदस्य वापस आए। उनके आते ही न्यायमूर्ति ने उनसे पहला प्रश्न पूछा- "आप जो फैसला देंगे वह एकमत से या भिन्न मत से ?" इस पर फोरमन ने कहा-"भिन्न मत से... तीनों आरोपों पर हममें से सात लोगों का मत है कि तिलक दोषी हैं और दो का मत है कि तिलक निर्दोष हैं।" इस पर न्यायमूर्ति दावर ने कहा- "मुझे भी अपना फैसला कानून के अनुसार ही देना होगा। ज्यूरी के बहुमत का फैसला मैं मान्य करता हूं।"

इसके बाद तिलक जी ने कहा कि मैं कुछ मुद्दे अदालत के सामने रखना चाहता हूं। ऐसा कहकर उन्होंने चौदह मुद्दे पढ़े। न्यायमूर्ति ने

इन मुद्दों को खारिज करते हुए कहा कि यदि आपको और कुछ कहना है तो आप कह सकते हैं।

तिलक जी ने खड़े होकर कहा, "ज्यूरी ने भले मुझे दोषी ठहराया है लेकिन मैं दोषी नहीं हूं। न्यायपीठ से भी ऊंची एक ऐसी शक्ति है जो सांसारिक बातों पर नियंत्रण करती है। शायद ईश्वर की ही यह इच्छा होगी कि मुझे सजा दी जाए और सजा भुगतने से ही मेरे अपनाये हुए कार्य को बढ़ावा मिल जाए।"

सन् 1956 में लोकमान्य तिलक जी की जन्मशती के अवसर पर तिलक जी के इन महान शब्दों की अंकित की हुई शिलापट्ट उस हाईकोर्ट में लगाई गई जहां न्यायमूर्ति दावर ने तिलक जी को दोषी ठहरा कर छह वर्षों की सजा फरमाई थी। न्यायमूर्ति दावर और उनके शब्द मिट गए, ब्रिटिश साम्राज्य भी नष्ट हो गया, लेकिन तिलक जी के ये शब्द 'काल के प्रवाह में न मिटनेवाले चिह्न के रूप में अमर हो गए।'

अंत में न्यायमूर्ति दावर ने तिलक जी को छह वर्ष की काले पानी की सजा सुनाई और मुकदमे का अध्याय खत्म हो गया। उसके बाद तिलक जी को आरोपी के कटघरे से बाहर निकालकर एक छोटी-सी सीढ़ी से नीचे लाया गया और हाईकोर्ट के पश्चिम में समुद्र किनारे पर तैयार रखी हुई मोटर से सीधे जेल रवाना कर दिया गया।

दूसरे दिन के प्रातः काल ही तिलक जी की सजा की खबर आग की तरह फैल गई और पूरे देश में दुख की छाया छा गई। लोग दुखी हुए और कई जगह पर जनता का गुस्सा भी प्रकट हुआ। मुंबई के मिल मजदूरों ने अपने आप हड़ताल की। सरकार ने मजदूरों पर दबाव डालने की कोशिश की लेकिन उसकी प्रतिक्रिया उल्टी होकर दंगे-फसाद की शुरुआत हो गई। असंतोष का यह दावानल ज्यादा

फैल न जाए, इसलिए सरकार ने सेना द्वारा बेरहमी से कई स्थानों पर गोलाबारी कराई। इसमें चार दिन में पचास से भी ज्यादा लोग मारे गए और अनेक घायल हुए। सैकड़ों लोगों को हिरासत में लिया गया और दंगा करने के जुर्म में एक वर्ष या उससे भी ज्यादा की कड़ी सजा सुनाई गई। भारत में मजदूरों का ऐसा साम्राज्य विरोधी प्रदर्शन उससे पहले कभी नहीं हुआ था।

मांडले का कारावास

तिलक जी को स्पेशल ट्रेन से अहमदाबाद ले जाया गया और साबरमती जेल में रखा गया। बाद में 10 सितंबर को उन्हें मुंबई लाया गया। बंदरगाह में 'हार्डिंज' नाम की बोट तैयार ही थी। उसमें उन्हें बिठाया गया। 22 सितंबर को वे रंगून पहुंचे। वहां से उन्हें मांडले ले जाया गया। तब से उनकी रिहाई तक के लगभग साढ़े पांच वर्ष वहीं बीते ।

इस कारावास के संबंध में श्री केलकर जी ने 'तिलक चरित्र' में वर्णन किया हैः "तिलक जी का घर यानी उनको दिया हुआ एक दो मंजिल का तीन खानों का कमरा। उनका साथी था उनका रसोइया। उन्हें मिलने के लिए आनेवाले लोग थे जेल के अधिकारी या डॉक्टर। वर्ष में एक बार उनका भांजा उन्हें मिलने जाता था लेकिन उससे भी तिलक जी को जेल की कचहरी में ही मिलना पड़ता था। महीने में एक बार घर पर खत लिखने की अनुमति तिलक जी को दी गई थी।"

पारिवारिक जीवन

सज़ा दे दिए जाने के बाद तिलक जी को घर के लोगों से भी मिलने नहीं दिया गया। किसी भी अग्नि परीक्षा से गुजरने की तैयारी तिलक

जी ने की हुई थी। अतः अपने परिवारजनों से अलग होकर भी वे विचलित नहीं हुए। तिलक जी के राजनीतिक और अन्य सार्वजनिक जीवन के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन उनके पारिवारिक जीवन के बारे में लोग बहुत कम जानते हैं।

तिलक जी का पारिवारिक जीवन उस समय के पुराने रस्मो-रिवाज के परिवार की तरह ही था। तिलक जी के भाई नहीं था। केवल एक बहन थी। वह भी दूर कोंकण में रहती थी। इसलिए संयुक्त परिवार के उस काल में भी तिलक जी, उनकी पत्नी सत्यभामा और उनके बच्चे-बस यह छोटा-सा ही परिवार था। रहन-सहन बहुत सीधा-सादा था। उस समय के अनुसार सत्यभामा भी पति की छाया में जीनेवाली एक स्त्री थी। देवदर्शन के अलावा वे घर से बाहर भी नहीं निकलती थीं।

घर की ओर ध्यान देने के लिए तिलक जी को फुर्सत नहीं मिलती थी, इसलिए उनके भांजे धोंडोपंत विद्वांस घर का सभी कारोबार देखते थे। राजनीतिक जीवन की व्यस्तता में बच्चों की ओर ध्यान देना तिलक जी के लिए बहुत मुश्किल हो जाता था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें घर-परिवार से प्रेम नहीं था। उस समय में पति-पत्नी दूसरों के सामने बातें भी नहीं करते थे। लेकिन उससे प्रेम की प्रबलता थोड़े ही कम हो जाती है?

तिलक जी के मांडले जाने से उनकी पत्नी सत्यभामा के हृदय पर बहुत बड़ा आघात हुआ। तिलक जी की उम्र अब पचास से अधिक हो चली थी और वे मधुमेह के भी मरीज थे। वे जिंदा वापस आएंगे, ऐसा सत्यभामा को नहीं लगता था। अतः वे बहुत उदास रहती थीं। मंगलसूत्र के सिवाय वे कोई भी गहना नहीं पहनती थीं। हमेशा एक सीधी-सादी काली साड़ी ही पहनती थीं। अपनी सेहत के लिए भी वे

लापरवाही बरतती थीं। कोई उन्हें कुछ पढ़कर सुनाने लगता तो उस तरफ भी उनका ध्यान नहीं रहता था। केवल बेटियों द्वारा पढ़ा हुआ 'भक्ति विजय' ग्रंथ वे अवश्य भक्तिभाव से सुनती थीं। सत्यभामा और बच्चों के बारे में तिलक जी की जो भावनाएं थीं वे इने-गिने इन शब्दों में,लेकिन तीव्रता से व्यक्त हुई हैं। 9 जनवरी, 1909 के पत्र में वे लिखते हैं, "श्रीमती जी और बच्चों से कहो कि मुझे अपनी चिंता नहीं है। उनकी ही चिंता अधिक है। मेरी सेहत सचमुच ही अच्छी है। यह मैं उन्हें अच्छा लगे, इसलिए नहीं लिख रहा हूं। उनको कहो कि मैं बहुत जल्दी आकर उन्हें मिलूंगा। दुख में आशा ही जीने का एकमात्र सहारा होती है। इसलिए उन्हें कहें कि निराश न हो जाएं।"

लेकिन यह नहीं होना था। सन् 1912 के जून माह में सत्यभामा का निधन हो गया। इसकी सूचना तार से मिलने पर तिलक जी ने जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश इस प्रकार है- "आपका तार पहुंचा। हृदय को गहरा सदमा लगा। यह सच है कि संकट आने पर उन्हें मैं शांति से झेलता हूं लेकिन सच कहता हूं कि इस खबर से मैं एकदम हिल गया हूं... उसकी मौत के समय मैं पास नहीं था, इसका मुझे दुख है... मेरे जीवन का एक हिस्सा खत्म हुआ। लगता है अब दूसरा भी जल्दी ही समाप्त होगा... मेरे न रहने से बच्चों को उसकी मौत का दुख अधिक ही महसूस हुआ होगा। उन्हें मेरी ओर से कहना कि दुख के कारण पढ़ाई का नुकसान न होने दें... बच्चों को आपके अलावा दूसरा कोई सहारा नहीं है इसलिए ईश्वर आपको शक्ति दें। इतनी दूर से मैं भी उन्हें और अधिक क्या कह सकता हूं?"

इस यादगार पत्र से हमें तिलक जी की उत्कट भावनाओं और विशाल हृदय का पता चलता है। तिलक जी जब मांडले की जेल में थे तब उनका खाना बनाने के लिए यरवदा जेल से एक कैदी को भेजा

गया था। उसका नाम था वासुदेव रामचंद्र कुलकर्णी। उसने तिलक जी के बारे में लिखा है-

"तिलक महाराज को सजा होने के पहले मैंने उन्हें कभी देखा भी नहीं था। इसलिए उन्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। तिलक महाराज को जिस कोठरी में रखा गया था वह दूसरी मंजिल पर थी। वह 20 x 12 फुट के दो खानों की थी। दुछत्ती के नीचे के दो खानों में रसोई, स्नान आदि की व्यवस्था की गई थी। महाराज के कमरे में जो सामान था उसमें एक टेबल, एक-दो कुर्सियां, एक कपड़े की आराम कुर्सी और चूंकि महाराज को किताबों का बहुत शौक था इसलिए उन्हें रखने के लिए एक-दो अलमारियां थीं। महाराज को मनचाहे कपड़े पहनने की अनुमति थी इसलिए धोती, कुरते, उनकी पगड़ी, पुनेरी जूता, ओढ़ने-बिछाने का सामान आदि फुटकर सामान भी वहां था...

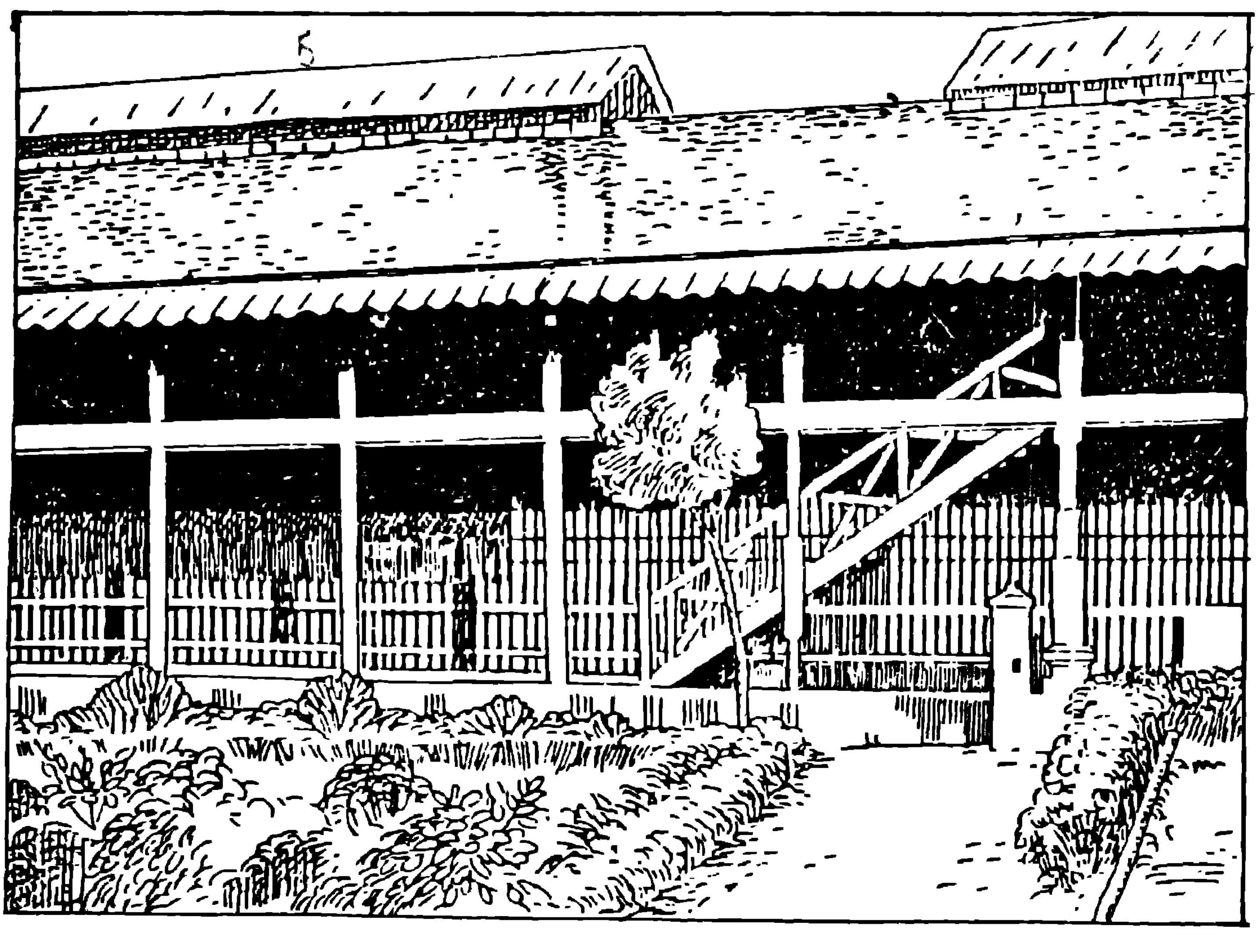
"महाराज का रोजमर्रा का कार्यक्रम ऐसा होता था- वे भोर में ही उठते थे। फिर पानी से कुल्ला करके कुछ संस्कृत श्लोकों का पाठ करते थे। फिर बिस्तर पर ध्यान लगाकर लगभग डेढ़ घंटा बैठते थे। मुंह धोने के बाद वे चाय लेते थे और उसके बाद पढ़ने-लिखने में मगन हो जाते थे। नौ बजे वे नहाने के लिए नीचे आते थे। नहाने में उन्हें बहुत पानी लगता था और वह भी बहुत स्वच्छ...

"पहले-पहल महाराज के लिए एक समय का गेहूं का आटा और एक समय के लिए चावल और दाल दी जाती थी। कुछ दिनों के बाद फल मिलने लगे और आगे तो सब कुछ मिलने लगा। महाराज के लिए पुणे से घर के पापड़, अचार और मसाला लाने की भी अनुमति मिली। मैं उनके लिए चावल, रोटी, सब्जी, चटनी और कचुंबर बनाता था। महाराज थोड़ा-सा खाते थे लेकिन खाते समय उनका ध्यान खाने में इतना नहीं रहता था।

"रोज दोपहर के भोजन के बाद ऊपर जाकर वे कोठरी के दो खानों में चहल-कदमी करते थे और फिर उनका पढ़ने-लिखने का काम शुरू होता था। शाम को पांच बजे तक भोजन खत्म करना पड़ता था। जेल के नियम के अनुसार ठीक छह बजे हमारे कमरों को बाहर से ताले लगाए जाते थे। कमरे के आसपास का आंगन लगभग डेढ़ सौ फीट लंबा और साठ फीट चौड़ा था। वहां नीम, आम आदि के पेड़ थे। दिन में इतनी ही जगह में घूमने-फिरने की उन्हें छूट थी।

"वे मुझे तुकाराम महाराज, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, रामदास स्वामी, श्रीकृष्ण, राम, शिवाजी महाराज और कौरव-पांडवों की कहानियां सुनाते थे। उनके पास दुनिया का गोल मानचित्र भी था। उससे मुझे वे हमेशा समझाया करते थे।

"जेल के पहले दो साल बीतने के बाद उनका मधुमेह का पुराना रोग कुछ बढ़ने लगा। इसलिए उन्होंने वैसा परहेज शुरू करने का निश्चय किया जैसा पुणे में चलता था। अतः उन्हें सत्तू और उसके



लिए आवश्यक दूध और घी दिया जाने लगा। सत्तू के आटे में नारियल की गरी मिलाकर घी में तली पूड़ियां और साथ में दही, यही उनका खाना रहता था...। मैं उन्हें घी में तली केले की पकौड़ियां खिलाता था। ये उन्हें बहुत पसंद थी। वे कहते थे, 'ये पकौड़े हमारे बच्चों और धोंडू को बहुत पसंद आएंगे लेकिन ये खाने के लिए मांडले में छह वर्ष गुजारने पड़ते हैं...!' उन्होंने मुझे ताकीद दी थी कि जो चावल वे खाते थे वही मैं भी खाऊं...

''महाराज को पढ़ने का बेहद शौक था। उनके पास पुणे से लाए हुए कई बड़े-बड़े ग्रंथ रखे हुए थे। वे दिन-रात उनमें उलझे रहते थे। महाराज का अधिकतर समय लिखने के बजाय पढ़ने में और उससे भी ज्यादा कपड़े की कुर्सी पर लेटकर सुपारी के टुकड़ों का स्वाद चखते हुए, आंखें छोटी-बड़ी करके विचार करने में बीतता था। मैंने एक बार उनसे पूछा, 'आप लगातार इतना किसका विचार करते रहते हैं?'

''उन्होंने हंसते-हंसते कहा, 'अरे, आदमी के दिमाग में ब्रह्मदेव की पूरी सृष्टि समाई हुई है और वहां उसकी निरंतर उलट-पुलट चालू रहती है'...। एक बार उन्होंने यूं ही कहा, 'मैं यहां एक स्कूल का छात्र हूं। यह दुछत्ती मेरा स्कूल है। किताबें मेरी शिक्षक और तू मेरा मित्र। यहां मैं जर्मन, फ्रेंच, पाली और दूसरी भी भाषाओं की पढ़ाई करता हूं...'

''बीच-बीच में महाराज से बड़े-बड़े साहब लोग यानी सरकारी अधिकारी मिलने आते थे। एक दिन कलेक्टर, सुपरिंटेंडेंट वगैरह आए थे। मैंने उन्हें बताया कि महाराज को जर्मन भाषा का काफी ज्ञान है। तब उनमें से एक आदमी ने कहा, 'मैंने अपनी बेटी को जर्मन सिखाया है। आप उसकी कुछ परीक्षा लो।'

''मुझे पांच साल की कड़ी कैद की सजा हुई थी। उसमें से तीन

साल पूरे होने के बाद महाराज के प्रयासों से मुझे शेष दो सालों में से डेढ़ साल के लिए माफी मिली। ऐसा लगा कि अब मुझे वहां से जाना पड़ेगा। तब मैंने महाराज से कहा कि मुझे दो साल तक वहीं रखेंगे तो मेहरबानी होगी। आपको छोड़कर जाने का मेरा दिल ही नहीं होता... लेकिन इस पर उन्होंने मुझे समझा-बुझाकर अपने बाल-बच्चों के पास जाने के लिए आशीर्वाद देकर निर्धारित दिन पर विदा किया...।''

पांच वर्षों की कैद की सजा जिसे मिली थी, ऐसे वासुदेव रामचंद्र कुलकर्णी नाम के इस आदमी के मन में भी तिलक जी के लिए कितना आदर जागृत हुआ था, यह इससे स्पष्ट होता है।

गीतारहस्यम्

मधुमेह के रोग से पीड़ित, पचास की उम्र पार करने वाले तिलक जी की ज्ञान साधना, मांडले जेल में निरंतर चल रही थी। उन्होंने वहां जो पुस्तकें पढ़ीं उनकी केवल सूची पढ़कर ही ताज्जुब होता है। भगवद्गीता के विभिन्न टीका-ग्रंथ तिलक जी ने पहले ही पढ़े थे और गीता पर भी स्वतंत्र रूप से बहुत विचार किया था।

भगवद्गीता की सीख लोगों को समझाने के लिए और भारतीय दर्शन का उच्च स्वरूप दुनिया के सामने प्रस्तुत करने के लिए तिलक जी कई सालों से इंतजार कर रहे थे, लेकिन राजनीतिक कार्य की भाग-दौड़ में उन्हें यह करना संभव नहीं हुआ।

मांडले की जेल में उन्होंने भगवद्गीता पर लंबे अरसे तक फिर से विचार किया। फ्रेंच दार्शनिक कांट और जर्मन दार्शनिक नीत्शे का साहित्य भी उन्होंने वहां पढ़ा और भगवद्गीता पर जो ग्रंथ लिखना था, उसका व्यवस्थित प्रारूप मन में तैयार होने के बाद 2 नवंबर, 1910 से उन्होंने लिखना शुरू किया।

सिर्फ साढ़े तीन महीनों में उन्होंने संपूर्ण 'गीतारहस्यम्' अपने हाथ से लिख डाला। "मैं जिसे गीता रहस्य कहता हूं, वह पूरा हो गया," ऐसा कहकर उन्होंने 2 मार्च, 1911 के पत्र में लिखा है, "गीता अध्यात्म ज्ञान पर आधारित व्यावहारिक नीतिशास्त्र का ग्रंथ है।"

8 जून, 1914 को सुबह आठ बजे मांडले जेल के सुपरिंटेंडेंट ने तिलक जी के कमरे में जाकर उन्हें सामान बांधकर तैयार रहने के लिए कहा। मांडले से रंगून पहुंचने पर उन्हें मेयो नाम के जहाज में बिठाया गया। जहाज 15 जून की शाम को मद्रास पहुंचा।

वहां से एक खास डिब्बे में तिलक जी को पुणे लाया गया। हडपसर पर गाड़ी रोककर तिलक जी को वहां उतारा गया और मंगलवार को यानी 16 तारीख की आधी रात के लगभग एक घंटे बाद तिलक जी को लानेवाली मोटरकार उनके घर अर्थात् गायकवाड़ वाडा के सामने आकर खड़ी हुई।

इस संबंध में तिलक जी लिखते हैं, "पुलिस के साथ आधी रात को घर आए हुए मालिक को दरवाजा खोलकर अंदर लिया जाए या नहीं, ऐसी शंका दरबान के मन में उत्पन्न हुई। इसलिए उसने धोंडोपंत को बुलाया और फिर मेरे अपने घर में मेरा प्रवेश हुआ।"

रविवार तारीख 21 को तिलक जी की रिहाई की खुशी में पुणे के नागरिकों की सार्वजनिक सभा गायकवाड़ वाडा में हुई। सभा स्थल पर तिलक जी के आते ही लोगों ने 'तिलक महाराज की जय' का जयघोष करके उनका स्वागत किया।

पुणे के ऋषि समान नागरिक श्री अण्णा साहब पटवर्धन की अध्यक्षता में हुए इस सम्मान का उत्तर देते समय तिलक जी ने कहा, "सुख और दुख में फर्क होता है। दुख में भागीदार मिलने से वह कम

होता है। वैसे सुख का नहीं। सुख में भागीदार मिलने से वह उल्टा बढ़ जाता है। आज यहां इकट्ठा हुआ समाज और दो दिन से मुझे मिलने के लिए आए हुए जनसमुदाय को देखकर, मेरी रिहाई से मुझे मिले सुख में सैकड़ों गुना ही नहीं बल्कि लाख गुना बढ़ोत्तरी हुई है।

"आज छह वर्ष के बाद मैं जब वापस आया और मैंने सारी परिस्थिति का जायजा लिया तब मुझे वाशिंग्टन आयर्विंग के 'रिप वॅन विंकल' की कहानी याद आई। वह कई साल नींद में ही था। जब वह जागा तो उसे सारी सृष्टि नई दिखने लगी। वैसी ही मेरी अवस्था आज हो गई है। मेरी जेल व्यवस्था इस प्रकार रखी गई थी कि इन छह वर्षों में क्या-क्या घटनाएं हुईं, तब के जीवित लोगों में से आज कितने लोग जिंदा हैं और कितने मर गए, उनकी कुछ भी जानकारी मुझे न मिले ...।

"यहां एकत्रित जनसमुदाय ने मेरा जो अभिनंदन किया उससे यह जाहिर है कि लोग मुझे भूले नहीं हैं। मैं भी लोगों को नहीं भूला हूं। छह वर्ष पहले आपसे मेरा जिस प्रकार का बरताव था वही बरताव मैं आगे भी करूंगा।"

4. व्यापक भूमिका और आंदोलन

अगस्त, 1914 में यूरोप में पहला महायुद्ध शुरू हुआ। यह युद्ध ब्रिटिश साम्राज्य पर एक बहुत बड़ा संकट था, इसलिए हिंदुस्तान में असंतोष बढ़ना सरकार को ठीक नहीं लग रहा था। जेल से छूटकर आने के बाद सरकार ने तिलक जी पर कई प्रतिबंध लगा रखे थे लेकिन युद्ध शुरू होते ही मुंबई सरकार ने तिलक जी के घर पर रखा गया पहरा तुरंत उठा लिया।

तिलक जी यह बराबर समझते थे कि ब्रिटिशों की कठिनाईयानी हिंदुस्तान के लिए बेहतर मौका। इस मौके का फायदा कैसे उठाया जाए, इस संबंध में बहुत विचार करके उन्होंने निर्णय लिया। 27 अगस्त को एक पर्चा निकालकर उन्होंने प्रचारित किया कि इस कठिन समय में ब्रिटिशों का समर्थन करना ही उचित है और मैं वही करने वाला हूं।

अनेक क्रांतिकारियों को लगता था कि महायुद्ध शुरू होने के मौके का फायदा उठाकर हमें आजादी प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयास करने चाहिए। उनमें से चिदम्बरम् पिल्लै तिलक जी से मिले। तिलक जी के साथ हुई मुलाकात का वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है- "मेरे गुरु (तिलक जी) मुझे अपने निजी कमरे में ले गए। यूरोप के युद्ध के बारे में हमने बातें कीं। जर्मनी के भारतीय देशभक्तों ने जो संदेश तिलक जी को भेजा था,उसकी भी जानकारी उन्होंने मुझे दी।

"वह संदेश इस आशय का था कि युद्ध काल में जो मौका हाथ में आएगा उसका फायदा उठाकर भारत की आजादी की लड़ाई के लिए तैयारियां की जाए। इस संदेश के अनुसार कार्रवाई करना संभव होगा कि नहीं और वह कदम सही होगा या नहीं, इस संबंध में हमने दो दिन तक चर्चा की।

"मेरे गुरु तिलक जी ने कहा कि इस संदेश में जिस तरह का मौका अपेक्षित है वैसा मौका हमें बार-बार नहीं मिलेगा। तिलक जी ने ऐसा मत व्यक्त किया कि यूरोप के युद्ध से इस समय भारत में ब्रिटिशों के खिलाफ बगावत करने के लिए अनुकूल वातावरण बनना मुश्किल है।"

तिलक जी को यह स्वीकार था कि महायुद्ध के कारण इंग्लैंड की परिस्थिति बहुत कठिन हो गई है, किंतु उस परिस्थिति में भी आजादी के लिए आवश्यक क्रांतिकारी कार्रवाई नहीं हो सकेगी, ऐसा तिलक जी का अंदाज था और उन्होंने क्रांतिकारियों को यह स्पष्ट बताया भी। तिलक जी का कहना था कि युद्ध काल की ब्रिटिशों की कठिनाई का फायदा उठाकर सरकार पर पर्याप्त दबाव डालकर ही कुछ राजनीतिक अधिकार हासिल करना संभव होगा।

तिलक जी ब्रिटिश साम्राज्य के बड़े विरोधी थे किंतु जर्मनी के राज्य कर्ताओं के भी पक्षधर नहीं थे। युद्ध काल के बारे में तिलक जी ने लिखा, "काल की घंटी हमें जागृत करके कह रही है कि बहुत ही जल्दी भारत के अच्छे दिन आएंगे। युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को भारत की मदद की जरूरत है,यह ध्यान में रखकर हमें राजनीति में दबाव का तंत्र अपनाना चाहिए।"

होमरूल लीग

इसके बाद तिलक जी ने होमरूल लीग की स्थापना करके होमरूल स्वराज्य की मांग का जोरदार समर्थन करना शुरू किया।

23 जुलाई, 1916 को तिलक जी का 61वां जन्म दिन था। उस काल की आयु सीमा को ध्यान में रखते हुए साठ साल तक जीना भाग्य की बात समझी जाती थी। और तिलक जी ने तो लंबी जेल काटी थी तथा उनका जीवन भी निरंतर कष्टमय था, इसके बावजूद उन्होंने 60 वर्ष पूरे किए-उसका आनंद उनके मित्रों, अनुयायियों और रिश्तेदारों को होना स्वाभाविक ही था।

मित्रों ने तिलक जी को मानपत्र और थैली अर्पण करके उनका सत्कार करने का निश्चय किया। कुछ ही दिनों में अपेक्षित राशि इकट्ठा हो गई। तिलक जी के सैकड़ों मित्र बाहर गांव से पुणे आए।

23 जुलाई की शाम को गायकवाड़ वाडा के मैदान में अभिनंदन समारोह संपन्न हुआ। तब हजारों लोग वहां उपस्थित थे। संस्कृत, अंग्रेजी और मराठी- तीनों भाषाओं में तिलक जी को मानपत्र प्रदान किया गया। मराठी के मानपत्र के शुरू में तिलक जी की निःस्वार्थ देश-सेवा का उल्लेख करके आगे लिखा था - "आपने जो लोक सेवा का व्रत लिया है वह बहुत कठिन और कष्टप्रद है। आप पर आए संकटों की ओर यदि पीछे मुड़कर देखा जाए तो कोई भी हिम्मत हार जाएगा। लेकिन आपने उन संकटों का मुकाबला कैसे किया, शांति से और धैर्य से उन संकटों को कैसे बरदाश्त किया, यह देखकर हमें बड़ा ताज्जुब लगता है। आप पर हमें गर्व है।"

मानपत्र में कृतज्ञता की भावना प्रबलता से व्यक्त की गई थी। इस कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में उन्हें एक निधि अर्पित की गई। इसके उत्तर में तिलक जी ने जो भाषण दिया वह उनके स्वभाव के

अनुरूप ही धीर-गंभीर था। तिलक जी ने कहा कि "लोगों के प्रेम से मैं अभिभूत हो गया हूं। उनका यह ऋण चुकाना मेरे लिए संभव नहीं है।"

मानपत्र और निधि को औपचारिक रूप से स्वीकार करके तिलक जी ने बताया कि इस राशि में तुलसीपत्र डालकर इसका ट्रस्ट बना लिया जाएगा और यह राशि राष्ट्रकार्य के लिए खर्च की जाएगी।

अंत में उन्होंने कहा, "किसी भी फल की अपेक्षा किए बिना सभी को इस राष्ट्रीय उद्योग में जुट जाना चाहिए। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर करे कि यह प्रेरणा आप सभी के हृदय में जागृत होकर मुझे अपनी आंखों के सामने उसका थोड़ा-सा फल देखने को मिले।"

तिलक जी के इस 61वें जन्म दिन के अवसर पर यह अनुभव हुआ कि जीवन में सुख और दुख प्रकाश और अंधेरे की तरह साथ-साथ पलते हैं। सुबह गायकवाड़ वाडा में धार्मिक संस्कार के समय ही पुलिस अधिकारी वहां गए और तिलक जी द्वारा बेलगांव और अहमदनगर में दिए हुए भाषणों के लिए राजद्रोह के जुर्म में मुकदमे का नोटिस उनके हाथ में थमा दिया। इससे तिलक जी जरा भी विचलित नहीं हुए। उल्टा, "मेरे लिए यह सरकार का उपहार है"- ऐसा कहकर उन्होंने स्थिर और शांत मन से शाम के समारोह में भाग लिया।

अगले दिन उनके एक मित्र ने आशंका प्रकट की कि शायद तिलक जी को सजा होगी। उस पर तिलक जी ने जवाब दिया कि यदि सजा हो भी गई तो जेल में मैं अपने इच्छित ग्रंथों का लेखन कर सकूंगा।

तिलक जी द्वारा दिए हुए भाषणों के लिए तिलक जी को बीस

हजार रुपयों की वैयक्तिक जमानत और बीस हजार रुपयों की और दो जमानतें देनी होंगी, ऐसा सरकारी हुक्म हुआ। जिला अधिकारी के इस आदेश पर तिलक जी ने अपील करने का निश्चय किया। उनकी ओर से बैरिस्टर जिन्ना ने बड़ी कुशलता से पैरवी की। न्यायमूर्ति ने फैसला दिया कि तिलक जी के भाषण आरोप लगाने जैसे नहीं थे। उन्होंने आदेश दिया कि तिलक जी को जमानत भी देने की आवश्यकता नहीं है।

न्यायमूर्ति के इस फैसले का पूरे देश में स्वागत हुआ। उस समय गांधी 'यंग इंडिया' अखबार के संपादक थे। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा-"भाषण स्वातंत्र्य का हक प्रस्थापित करने की लड़ाई में यह एक बड़ी विजय हमें मिली है। उसी प्रकार होमरूल के प्रश्न के बारे में भी यह एक महत्वपूर्ण विजय है।"

लखनऊ का अधिवेशन

सन् 1916 के दिसंबर महीने में लखनऊ में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन होने वाला था। बेलगांव में मई माह में एक सभा आयोजित हुई थी। उसमें तिलक जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय पक्ष ने राष्ट्रीय सभा में शामिल होने का निर्णय लिया था।

लखनऊ में होनेवाले अधिवेशन में सुधारों का मसौदा चर्चा के लिए रखा जानेवाला था। इस दृष्टि से नरम दल के नेताओं ने अपना मसौदा भेजा तथा मुस्लिम लीग ने भी अपना मसौदा भेजा। होमरूल लीग की ओर से बाप्टिस्टा ने भी एक मसौदा भेजा। लंबी अवधि के मनमुटाव के बाद सभी धाराएं राष्ट्रीय सभा के मंच पर एकत्रित हो रही थीं इसलिए लोगों में बड़े उत्साह का संचार हुआ था।

राष्ट्रीय पक्ष के लोगों को आह्वान किया गया था कि वे भारी

संख्या में इस अधिवेशन में उपस्थित रहें। इस आह्वान के अनुसार महाराष्ट्र के अनेक लोग लखनऊ जाने के लिए निकले। इन सभी की सुविधा के लिए मुंबई के डॉ. साठे के प्रयासों से एक स्पेशल ट्रेन चलाई गई। तिलक जी भी इसी स्पेशल ट्रेन में थे। रास्ते में जगह-जगह लोगों ने गाड़ी रोककर बड़े उत्साह से तिलक जी का स्वागत किया।

तिलक जी जब लखनऊ पहुंचे तब लोगों का उत्साह चरम सीमा तक पहुंच गया। तिलक जी को एक बड़ी गाड़ी में बिठाया गया और उनके मना करने पर भी गाड़ी के घोड़े निकाल कर युवा स्वयंसेवक स्वयं वह गाड़ी खींचकर ले गए। इस प्रकार दीर्घ काल की देश-सेवा और अतुलनीय त्याग के बाद तिलक जी 'लोकमान्य' हो गए।

स्वागताध्यक्ष जगत नारायण ने अपने भाषण में इस बात पर खुशी व्यक्त की कि गरम दल और मुसलमान भी इस अधिवेशन में शामिल हुए। अधिवेशन के अध्यक्ष अंबिका चरण मजुमदार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "वर्ष 1907 में सूरत में कांग्रेस में जो फूट पड़ी थी वह आज नौ वर्षों के बाद लखनऊ के इस केसर बाग में फिर से जोड़ी गई। इसके आगे बुजुर्गों को चाहिए कि वे युवकों को न ठुकराएं और युवक भी बुजुर्गों का अपमान न करें... एक-दूसरे की निंदा न करके जिन नेताओं ने सरकार के साथ संघर्ष जारी रखा है उनके पीछे-पीछे ही हम चलेंगे... आज नौ वर्षों के बाद लखनऊ में हमारे बीच वापस आए हुए हमारे मित्र तिलक जी का मैं हृदय से स्वागत करता हूं।"

वहां उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने तालियों की गड़गड़ाहट की और इस स्वागत में सहभागी होने का आनंद व्यक्त किया। अधिवेशन के आरंभ में तिलक जी जब सभा स्थल पर उपस्थित हुए तब सभी

ने खड़े होकर उनका हार्दिक स्वागत किया।

दो दिन विषय-नियामक समिति में सुधारों की योजनाएं एकत्रित कर उन्हें मदवार पढ़कर उसके निष्कर्ष के रूप में एक नई योजना सर्वसम्मति से तैयार की गई। वही आगे चलकर कांग्रेस-लीग स्कीम के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस योजना में स्वराज्य की मांग करते समय यह स्पष्ट किया गया था कि इस मांग को देश के सभी धर्मों के लोगों का समर्थन प्राप्त है। इस करार में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि मुसलमानों के लिए पृथक मतदाता संघ दिया जाएगा और जहां वे कम संख्या में हों वहां उन्हें उनकी संख्या से अधिक स्थान दिए जाएंगे।

विषय-नियामक समिति में इस मुद्दे पर बहुत बहस हुई और तीव्र मतभेद भी हुए। इस प्रस्ताव पर पं. मदन मोहन मालवीय का सख्त विरोध था। समिति में जो कुछ भी हुआ उसके बारे में सी. एस. रंगाअय्यर ने कहा,

"इस चर्चा के दौरान लोकमान्य तिलक सभा में किसी पर्वत की तरह अचल बैठे हुए थे... पं. मालवीय ने हिंदू महासभा वालों को बताया कि यदि कांग्रेस मुसलमानों की शरण में गई तो हम उसके खिलाफ प्रस्ताव लाएंगे।

"किंतु सबसे अधिक धर्मपरायण वृत्ति के व्यक्ति और वेदों के अधिकारी विद्वान लोकमान्य तिलक जी ने करार विरोधी के तर्कों का खंडन किया। उन्हें ऐसा लगता था कि मुसलमानों में राष्ट्र के बाहर निष्ठा के स्थान पर राष्ट्रवादी भूमिका जागृत करने के लिए ऐसा करार आवश्यक ही था, तिलक जी के कारण ही हिंदू-मुसलमानों की एकता बनी रही।"

लखनऊ समझौता

इस संदर्भ में जिन्ना ने कहा, "हिंदू-मुसलमान एकता बनाए रखने में लोकमान्य तिलक ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा करके देश की बहुत बड़ी सेवा की है। उन्हीं के कारण लखनऊ करार हुआ।"

अधिवेशन के इस प्रस्ताव पर बोलते समय तिलक जी ने कहा, "कुछ लोग कहते हैं कि हिंदुओं ने मुसलमानों को ज्यादा सुविधाएं दी हैं। देश के सभी हिंदुओं की तरफ से मैं कहता हूं कि राज्य के सभी अधिकार भी अगर मुसलमानों को दे दिए जाएं तो भी हमें उसका कोई दुख नहीं होगा। ये अधिकार अगर राजपूतों को दिए गए या समाज के पिछड़े वर्ग के लोगों को दिए गए तो भी उसके लिए हमें कोई एतराज नहीं है।

"इस अधिवेशन में हमने अपने आपसी राजनीतिक मतभेद समाप्त किए हैं और स्वराज्य की मांग के लिए हम कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले हैं... आज संयुक्त प्रांत में हम सब इकट्ठे हुए हैं और लखनऊ में हमें अपना सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

सरकार का समर्थन करते हुए इस मार्ग से भी देश-सेवा किस तरह की जा सकती है, तिलक जी लोगों को बता रहे थे। लेकिन सरकार वही नहीं चाहती थी। इसलिए सरकार ने तिलक जी को पंजाब में जाने की मनाही की। फिर तिलक जी ने कर्नाटक में दौरा करके होमरूल की योजना लोगों को समझाई। होमरूल लीग के लिए उन्हें आर्थिक सहायता की जरूरत थी। किंतु उसके साथ-साथ स्वराज्य का आंदोलन व्यापक होना चाहिए, यह भी उनका आग्रह था।

बेलगांव जिले के चिकोड़ी में 'स्वराज्य संघ' (होमरूल लीग) की बैठक में भाषण करते समय तिलक जी ने कहा, "हमारी लीग को केवल पांच हजार रुपयों की जरूरत होती तो कोई अकेला आदमी भी

वह दे देता। लेकिन ये रुपये मुझे ऐसे नहीं चाहिए।.एक-एक रुपया देने वाले 5000 लोग हमें चाहिए। उनमें हाथ में कलम पकड़नेवाले लोगों के साथ-साथ, हाथ में हल पकड़नेवाले लोग भी चाहिए... मराठी में कहावत है कि 'पांच मुखी परमेश्वर' अर्थात् यदि पांच लोग एकत्र हुए तो उनके मुंह से परमेश्वर बोल सकता है। तो फिर यदि पांच हजार लोग सदस्य होकर स्वराज्य मांगने लगेंगे तो उनके मुंह से परमेश्वर तुरंत बोलेगा कि नहीं?

"नियमित रूप से पंढरपुर जानेवाले विट्ठल भक्त को यदि पंढरपुर में मृत्यु आती है तो वह समझता है कि उसे मुक्ति मिली। वैसे ही मैं पूछता हूं कि आप ऐसा क्यों नहीं समझते कि स्वराज्य की मांग करते समय यदि मृत्यु आ जाए तो देश को मुक्ति मिलेगी?"

निपाणी में जैन लोगों के सामने भाषण करते समय तिलक जी ने कहा, "आपके मंदिर में 51 तीर्थंकर होते हैं। उसी प्रकार इस देश में तीस करोड़ तीर्थंकर होने चाहिए। आप जैसे व्यापारियों को धर्म का स्मरण है लेकिन राष्ट्रीय धर्म का पालन-पोषण भी आपको करना चाहिए।"

पुणे में स्वराज्य संघ की पहली वार्षिक सभा का समापन करते समय तिलक जी ने कहा, "अगले वर्ष में होमरूल लीग के 50 हजार सदस्य होने चाहिए और उतने ही रुपये मिलने चाहिए।"

सत्याग्रह

लगभग इसी समय गांधी जी ने बिहार के चंपारण जिले में नील की खेती करनेवाले मजदूरों पर होनेवाले अन्याय के खिलाफ सत्याग्रह किया। और वह कामयाब हुआ।

सत्याग्रह के साधन का उपयोग करने की इच्छा कई लोगों के मन

में उत्पन्न हुई। 'नरम' दल के लोगों को यह मार्ग गैरकानूनी लग रहा था। सत्याग्रह के संबंध में 'केसरी' ने लिखा, "जब सरकार सत्य और न्याय को पैरों तले रौंदती है तब सरकार जो चाहती है वह करना, और जो नहीं चाहती है वह भी करना-यही सत्यप्रियता और न्यायप्रियता का चिह्न मानना चाहिए। पहले स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य के बारे में राष्ट्रीय सभा में काफी बहस हुई, लेकिन अंत में स्वराज्य के ध्येय को मान्यता मिली। इससे यह पता लगेगा कि जो पहले राष्ट्रीय सभा का ध्येय बन गया था वही अब राष्ट्रीय सभा का कार्यकारी साधन बनने जा रहा है।" इस अग्रलेख में सत्याग्रह के साधन का अच्छा बखान किया गया था।

9 अक्टूबर को तिलक जी ने 'केसरी' में अग्रलेख लिखा कि "एक स्वर से निर्णायक मांग करो।" उन्होंने आग्रहपूर्वक यह कहा कि स्वराज्य की मांग का सभी को समर्थन करना चाहिए। इस अग्रलेख में उन्होंने कहा कि "हिंदुस्तान की स्वतंत्रता संपूर्ण मानव जाति के हित का प्रश्न है।"

12 अगस्त को मुंबई प्रांतीय कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक में शुरू में काफी बहस हुई लेकिन बाद में समझौता हो गया और गांधी जी, तिलक जी और चंदावरकर जी इन तीनों की सहमति से तैयार किया गया प्रस्ताव मंजूर किया गया। इस प्रस्ताव द्वारा सत्याग्रह को मान्यता दी गई।

स्वराज्य

दिसंबर महीने में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के बाद तिलक जी वापस पुणे आए। 5 फरवरी, 1918 से तिलक जी ने वराड (विदर्भ) का दौरा करके 'स्वराज्य यानी क्या और उसके लिए लोगों को क्या

करना चाहिए', इस विषय पर सोलह दिनों में बत्तीस व्याख्यान दिए।

लोक जागृति के लिए तिलक जी ने जो दौरा किया उसकी रपट स्वराज्य संघ की मुंबई की बैठक में दी। तिलक जी ने वराड में 32 और अन्य जगहों पर 56 और 88 व्याख्यान देकर स्वराज्य की कामना लोगों के मन में बो दी।

बेहिसाब यात्रा तथा भीड़ की तकलीफ के बावजूद तिलक जी लोगों के मन में देशभक्ति की ज्योति जलाकर राज्य के आंदोलन में भाग लेने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते थे। इस उद्देश्य से अपने प्राणों की परवाह न करते हुए वे गांव-गांव व्याख्यान देने के लिए जाते थे। उनका असामान्य त्याग, निष्कलंक चरित्र, देश हित की चिंता और सीधी-सादी सरल भाषा में लोगों को विषय को समझाने की उनकी कुशलता की वजह से उनके व्याख्यानों को भारी समर्थन मिला। इन व्याख्यानों का सारांश उनके ही शब्दों में आगे दिया गया है-

"जिस प्रकार हम घर का कारोबार चलाते हैं उसी प्रकार देश का कारोबार लोगों को खुद चलाना चाहिए। यही स्वराज्य का अर्थ है। नौकरशाही, कारोबार में मदद करने के लिए होती है लेकिन फिलहाल ब्रिटिश नौकरशाही ही मालिक बन गई है। जनता की शिकायतों की ओर वह ध्यान ही नहीं दे रही है। हमें अपने हक जानकर उन्हें प्राप्त करने के लिए आंदोलन करना चाहिए। यदि हम एकजुट होकर आंदोलन करेंगे तो स्वराज्य का अधिकार हमें अवश्य मिलेगा।"

सन् 1918 के मार्च महीने में मुंबई में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की अध्यक्षता में अस्पृश्यता निवारण परिषद् आयोजित की गई। इस परिषद् के लिए महान समाज सुधारक विट्ठल रामजी शिंदे जी ने पहल की थी। शिंदे जी को लगता था कि अखिल भारतीय स्तर पर परिपत्र निकालकर उस पर सभी कौम के नेताओं

के दस्तखत लिए जाएं। तब तिलक जी इंग्लैंड जाने की तैयारी में व्यस्त थे। फिर भी शिंदे जी के आग्रह पर उन्होंने परिषद् में जाना स्वीकार किया।

25 मार्च, 1918 को तिलक जी ने बैठक में ऐसा प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस के अस्पृश्य वर्ग के प्रतिनिधियों को लेकर अपने कार्य के लिए उनका समर्थन प्राप्त करना चाहिए। उनके भाषण का कुछ अंश इस प्रकार है- "ईश्वर को यदि अस्पृश्यता मंजूर है तो मैं इसे ईश्वर ही नहीं कहूंगा... मैं आज पहली बार यहां आया हूं लेकिन हृदय से हमेशा इस आंदोलन से जुड़ा हुआ हूं... प्राचीन काल में ब्राह्मणों के जुल्म के कारण यह प्रथा चल पड़ी, यह मैं मानता हूं लेकिन अब इस रोग का समूल नाश होना चाहिए।"

इंग्लैंड का दौरा

इंग्लैंड में जाकर वहां के राजनीतिक प्रवाहों का अवलोकन करके, हिंदुस्तान के स्वराज्य की मांग को समर्थन देनेवाले व्यक्ति और राजनीतिक पक्षों से संबंध जोड़ने का उद्देश्य मन में लेकर तिलक जी इंग्लैंड गए।

तिलक जी ऐसा सोचते थे कि स्वराज्य का आंदोलन मुख्यतः हिंदुस्तान में ही चलना चाहिए। किंतु उसके साथ-साथ विदेश से मदद प्राप्त करने की कोशिश करनेवाले व्यक्तियों को भी हमेशा प्रोत्साहन देते थे। उन्हें निरंतर ऐसा लगता था कि विदेश में, विशेषतः इंग्लैंड में जनमत हिंदुस्तान के लिए अनुकूल हो जाना चाहिए।

उन्हें यह भी जरूरी लगता था कि यह बात दुनिया के सामने लाना बहुत अनिवार्य है कि हिंदुस्तान का आर्थिक शोषण ब्रिटिशों द्वारा कितने भयानक रूप में किया जा रहा है और उसके कारण हिंदी

जनता की स्थिति कितनी भयावह बन गई है।

इंग्लैंड के मजदूर वर्ग के लिए तिलक जी के मन में विशेष आस्था थी। सन् 1907 में पुणे के नेताओं के निमंत्रण पर उस पक्ष के श्री केरहार्डी पुणे आए थे। यह निमंत्रण देने में तिलक जी प्रमुख थे। केरहार्डी का जन्म एक गरीब स्कॉट परिवार में हुआ था। वे पहले किसी कोयले की खान में मजदूर थे। अपनी मेहनत और लगन से आगे बढ़कर वे पार्लियामेंट के सदस्य चुने गए। स्वतंत्र मजदूर पक्ष के वे अध्यक्ष थे और 'लेबर लीडर' नाम का अखबार भी चलाते थे। हिंदुस्तान की परिस्थिति का जायजा लेकर उसका अध्ययन करने के लिए वे हिंदुस्तान आए थे। तिलक जी ने केरहार्डी का हार्दिक स्वागत कर, सार्वजनिक सभा की ओर से उन्हें मानपत्र प्रदान किया।

उस मानपत्र में कहा गया था कि हिंदी जनता को ऐसा लगने लगा है कि इंग्लैंड के मजदूर पक्ष पर निर्भर न रहकर स्वार्थत्याग और स्वावलंबन के मार्ग से ही राष्ट्र के भविष्य का प्रश्न सुलझाया जा सकता है। मानपत्र में ऐसी विनती की गई थी कि "हिंदी जनता की न्याय की आकांक्षा के बारे में आप ही इंग्लैंड की जनता को समझाइए।"

मानपत्र का उत्तर देते समय केरहार्डी ने कहा, "हिंदुस्तान के लिए मेरे हृदय में सहानुभूति थी ही लेकिन अब वह सौ गुना बढ़ गई है... इंग्लैंड के हजार लोगों में से 999 लोग हिंदुस्तान के बारे में अनजान हैं। अपने पक्ष की परिषद् में मैं आपकी हकीकत जरूर बयान करूंगा।"

राजनीतिक दूरदृष्टि

सन् 1918 के ब्रिटिश पार्लियामेंट के चुनाव में मजदूर पक्ष (लेबर पार्टी) उम्मीदवार था। तिलक जी ने मजदूर पक्ष को चुनाव प्रचार के

लिए दो हजार पौंड की धनराशि से मदद की। यह चाल सचमुच ही मंजे हुए कूटनीतिज्ञ की थी। तिलक जी को लगता था कि भविष्य में मजदूर पक्ष का महत्व जरूर बढ़ेगा और इसलिए उन्होंने उस पार्टी से नजदीकी संबंध जोड़ने की शुरुआत की। इसे ही कहते हैं राजनीतिक दूरदृष्टि।

रौलट एक्ट

जब हिंदुस्तान में रौलट एक्ट पारित हो गया तब 1 मई, 1919 को इंग्लैंड के हाइड पार्क में लेबर पार्टी की बहुत बड़ी सभा हुई। रौलट एक्ट के खिलाफ प्रस्ताव पारित किए गए। पैर में मोच आ जाने के कारण तिलक जी उस सभा में नहीं जा सके। 3 मई की मजदूर पक्ष की सभा के लिए तिलक जी को उठाकर मंच पर ले जाया गया। उस विशाल सभा में तिलक जी ने बहुत प्रभावशाली भाषण दिया।

5 जून, 1919 को तिलक जी कैम्ब्रिज गए और वहां के हिंदी छात्रों की हिंदी सभा के सामने उन्होंने भाषण दिया। उन्होंने युवकों से सीधा ही सवाल किया, "तुम लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर और स्वतंत्र वातावरण के विचार लेकर हिंदुस्तान जाओगे, लेकिन तुममें से कितनों ने ऐसा निश्चय किया है कि वे केवल स्वार्थ साधन का विचार न करके, अपने आपको देश कार्य के लिए अर्पित करेंगे?" ऑक्सफोर्ड में भी छात्रों के सामने तिलक जी का भाषण हुआ।

इंग्लैंड में रहते हुए तिलक जी और बैरिस्टर बाप्टिस्टा इन दोनों ने मिलकर 'सेल्फ डिटरमिनेशन' नाम की पुस्तिका तैयार की। तिलक जी ने उसकी हज़ारों प्रतियां इंग्लैंड के राजनीतिक पक्ष, कार्यकर्ता, विचारक, अखबार और पुस्तकालय आदि को भेजी। इसका पूरा खर्च तिलक जी ने उठाया। इस पुस्तिका का मसौदा बैरिस्टर बाप्टिस्टा ने

तैयार किया था। उत्कृष्ट अंग्रेजी और तर्कसंगत दलीलें इस पुस्तक की विशेषताएं थीं। पुस्तिका के मसौदा से तिलक जी की राजनीतिक भूमिका स्पष्ट रूप से व्यक्त हो गई थी।

पुस्तिका के आरंभ में हिंदुस्तान का एक राष्ट्र के रूप में विचार क्यों किया जाना चाहिए, इस संबंध में इस प्रकार दलीलें दी गई थीं: "ऐसा एक मुद्दा उठाया जाता है कि हिंदुस्तान एक राष्ट्र न होकर अनेक राष्ट्रों का एक समूह है, एक देश न होकर केवल एक क्षेत्र है। इस कथन से सत्य छिप जाता है और जो अज्ञानी होते हैं वे गुमराह हो जाते हैं।"

आगे यह बताया गया था कि हिंदुस्तान की विभिन्नता में एकात्मकता है। इस संदर्भ में लिखा था कि "ब्रिटेन में जिस प्रकार विभिन्न वर्ग होकर भी उस राष्ट्र का विभाजन नहीं होता, उसी प्रकार हिंदुस्तान में भी अनेक जातियों के लोग होते हुए भी राष्ट्र का विभाजन नहीं हो सकता। भिन्न विचार या आस्था के कारण राष्ट्र विभाजित नहीं होता और यदि ऐसा विभाजन हुआ तो धार्मिक सहिष्णुता का नामोनिशान ही मिट जाएगा।"

पहला महायुद्ध समाप्त होने के बाद पेरिस में जो शांति बैठक हुई थी,उसके अध्यक्ष जार्ज केमिंको ने तिलक जी को 11 मार्च, 1919 को एक निवेदन भेजा।

इस बैठक में हिंदुस्तान को प्रतिनिधित्व देने की विनती करते हुए तिलक जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि ये प्रतिनिधि लोगों द्वारा चुने जाने चाहिए। इस निवेदन में भारत को खुद का भविष्य तय करने का अधिकार (राइट ऑफ सेल्फ डिटरमिनेशन) होना चाहिए। ऐसा कहकर आगे यह भी बताया कि जनतंत्र की पद्धति से देश का कारोबार चलाने की योग्यता और क्षमता हिंदी लोगों में है।

निवेदन में कहा गया था, "एशियाई क्षेत्र में शांति स्थापित करने के लिए और विश्व शांति की दृष्टि से भारत को अपने आंतरिक मामलों में संपूर्ण आजादी मिलनी चाहिए। हिंदुस्तान ही दुनिया के पूर्वी देशों की आजादी का उदाहरण होना चाहिए।"

मतदान का अधिकार

इंग्लैंड में संयुक्त संसदीय समिति के सामने तिलक जी द्वारा दी गई गवाही को उनके इंग्लैंड में किए गए कार्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग मानना पड़ेगा। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों का अधूरापन दिखाने के बाद तिलक जी ने आग्रहपूर्वक प्रतिपादित किया कि "आने वाले पंद्रह वर्षों में भारत को संपूर्ण स्वायत्तता प्राप्त राज्य की स्थिति प्राप्त होनी चाहिए।"

तिलक जी ने यह मांग भी की कि सुधारों के रूप में हिंदुस्तान को तुरंत प्रांतीय स्वायत्तता देकर प्रांतों का सभी कामकाज लोक नियुक्त प्रतिनिधियों को सौंपा जाए। उसी प्रकार, केंद्र में भी कुछ विभागों का कामकाज लोक प्रतिनिधियों के नियंत्रण में रखा जाए। साम्राज्य के हित की दृष्टि से फिलहाल विदेशी संबंधों जैसे विभागों पर ब्रिटिश सरकार का ही नियंत्रण रहे- यह विचार तिलक जी ने वहीं स्पष्ट रूप से प्रकट किया।

तिलक जी ने ऐसा विश्वास व्यक्त किया कि हिंदुस्तान की जनता मतदान के अपने अधिकार का इस्तेमाल पूरी जिम्मेदारी से कर सकेगी। संयुक्त संसदीय समिति के सामने किए गए निवेदन के अंत में तिलक जी ने कहा, "लोगों को दिए जानेवाले अधिकारों को सुधार कानूनों की कानूनी व्यवस्था में शामिल करना जरूरी है।"

इंग्लैंड की असलियत को पहचानते हुए तिलक जी ने ऐसा अंदाज

लगाया था कि मजदूर पक्ष से संबंध जोड़ने से भविष्य में इस पार्टी का उपयोग हिंदुस्तान अवश्य करेगा। यह केवल राजनीतिक अनुमान नहीं था।

तिलक जी ने फेबियन सोशलिस्टों में श्री वेब के साथ भी स्नेह सूत्र जोड़े थे। ऐसा लगता है कि हिंदुस्तान में रहते समय सन् 1917 में हुई रूस की राज्य क्रांति की ओर तिलक जी का ध्यान शायद नहीं गया था। इस घटना का अर्थ वे केवल जार की जुल्मशाही ही शायद लगा रहे थे।

इंग्लैंड में आने के बाद वेब जैसे समाजवादी विचारक से तिलक जी को रूस की क्रांति के संबंध में बहुत सारी जानकारी मिली, लेकिन इस बारे में तिलक जी ने तत्काल कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। इंग्लैंड के लोकतंत्र की दृष्टि से ऐसा करना ठीक नहीं था। लेकिन तिलक जी को ऐसा जरूर लगा होगा कि रूसी राज्य क्रांति की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन जरूर करना चाहिए।

तिलक जी ने जिस तरह मजदूर पक्ष को दो हजार पौंड दिए, उसी प्रकार अमरीका में हिंदुस्तान की भूमिका लोगों को समझाने के लिए पांच हजार डालर की राशि देकर लाला लाजपतराय और ना. सु. हर्डीकर को वहां भेजा। लाला लाजपतराय ने खत लिखकर इस राशि का इस्तेमाल कैसे किया गया, यह तिलक जी को सूचित किया। डॉ. हर्डीकर के पत्र में हिंदू-मुसलमान मजदूरों के एकजुट होने का उल्लेख है।

दुनिया के प्रमुख देशों के लोगों को भारत की स्थिति समझाई जाए और स्वराज्य के आंदोलन को उनका समर्थन प्राप्त हो, यही तिलक जी की इच्छा थी। किंतु केवल राजनीतिक उद्देश्य से वे इस प्रश्न की ओर नहीं देख रहे थे।

तिलक जी की दृष्टि के बारे में कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर लिखते हैं, "तिलक जी ने अपना प्रतिनिधि मेरे पास भेजकर कहलवाया कि मैं इंग्लैंड के दौरे पर जाऊं। उसके लिए पचास हजार रुपयों की मदद देने का आश्वासन भी दिया है।

"आश्चर्य की बात तो यह है कि तिलक जी ने मुझे स्पष्ट रूप से सूचित किया है कि वे मुझसे राजनीतिक प्रचार की उम्मीद नहीं रखते हैं। उन्होंने ऐसा भी सूचित किया है कि मैं अपने आपसे ईमानदार रहूं और मनुष्य जाति की सेवा करने का जो मार्ग मैंने स्वीकारा है, उसी माध्यम से भारत की सेवा करूं।

"मैं मानता हूं कि तिलक जी का यह संदेश मेरा श्रेष्ठ गौरव था। मैं शायद उसके योग्य नहीं भी हूंगा, किंतु तिलक जी के इस संदेश से उनके व्यक्तित्व के बड़प्पन का प्रमाण मुझे मिला और मेरे हृदय पर उसका गहरा असर हुआ।"

भारत के भविष्य के बारे में तिलक जी के विचार बहुत ऊंचे थे। आजादी के अनेक पहलू होते हैं इसलिए अलग-अलग तरह के गुणों के सभी लोगों को आजादी के आंदोलन में अपनी-अपनी पद्धति से सहभागी बनाया जा सकता है, इसका सीधा एहसास तिलक जी को था।

तिलक जी जब इंग्लैंड में थे तभी नागरिक स्वतंत्रता को रौंदने वाला रौलट एक्ट पारित किया गया। पूरे हिंदुस्तान में उस पर तीखी प्रतिक्रिया हुई। उसके खिलाफ गांधी जी ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। पंजाब में गवर्नर ओडवायर ने आंदोलन को कुचलने के लिए क्रूरता का मार्ग अपनाया और उसी का नतीजा जालियांवाला बाग के भीषण हत्याकांड के रूप में सामने आया। तब तिलक जी इंग्लैंड में थे इसलिए सीधे रूप में वे कुछ नहीं कर सके,फिर भी उन्होंने रौलट

एक्ट का प्रतिरोध जरूर किया।

जालियांवाला बाग के हत्याकांड से तिलक जी बहुत चिंतित हुए। अगस्त के पहले सप्ताह के बाद उन्होंने मांटेग्यू से मुलाकात की। तिलक जी ने मांटेग्यू से निवेदन किया कि पंजाब में लश्करी (सैनिक) कानून के तहत लोगों को कड़ी से कड़ी सजाएं दी गई थीं, उन्हें तुरंत रद्द करके उन सभी को रिहा किया जाए।

6 नवंबर को तिलक जी अपने सहायकों के साथ जहाज से भारत आने के लिए निकले और 26 नवंबर को मुंबई पहुंचे। वहां पहुंचने पर उन्होंने कहा-

"आज रिफॉर्म बिल के द्वारा दिए गए सुधार भले ही कम हों, उससे हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। लेबर पार्टी ने हमारा होमरूल बिल पार्लियामेंट में लाने का आश्वासन दिया है।

"आज जो कुछ भी मिल रहा है उसे अपने पल्ले बांध लो। लेकिन केवल उससे संतुष्ट होकर आंदोलन मत छोड़ो। क्योंकि ऐसी कहावत ही है कि 'संतोषो हरति श्रियम्'।

"यहां की सभी खबरें मुझे वहां मिलीं। मुझे दुख सिर्फ इस बात का है कि गांधी जी ने रॉलट एक्ट के खिलाफ सत्याग्रह शुरू किया है और उसमें भाग लेने के लिए मैं यहां नहीं था।"

तिलक और गांधी

हिंदुस्तान को आजादी मिलनी चाहिए, इस संबंध में तिलक जी और गांधी जी दोनों एकमत थे किंतु दोनों के स्वभाव और कार्यपद्धति में अंतर था। गांधी जी जब दक्षिण अफ्रीका से वापस आए तब उन्होंने यहां के सभी नेताओं से मुलाकात की। इस संबंध में गांधी जी लिखते हैं, "तिलक जी मुझे किसी महासागर की तरह लगे किंतु गोखले जी

मुझे गंगा की तरह लगे। मानो गंगा मैया ने मुझे हृदय से लगाया।"

जब लखनऊ कांग्रेस में गांधी जी उपस्थित थे तब तिलक जी की लोकप्रियता चरम सीमा तक पहुंची हुई थी। गांधी जी के हृदय में तिलक जी के प्रति बहुत आदरभाव था और वह उनके भाषणों से, लेखों से हमेशा प्रकट होता था। लखनऊ कांग्रेस के बाद गांधी जी बिहार के चंपारण में गए। वहां उन्होंने सत्याग्रह के साधन का प्रभावी इस्तेमाल कर नील के खेतों में काम करने वाले मजदूरों को न्याय दिलाया । गांधी जी की इस लड़ाई को तिलक जी का समर्थन प्राप्त था और उन्होंने हमेशा गांधी जी की सराहना ही की।

गांधी जी सत्याग्रह को अपने राजनीतिक जीवन का तत्वज्ञान मानते थे। तिलक जी की भूमिका इससे अलग थी। 'साधना नाम् अनेकता' यह तिलक जी की कार्यपद्धति थी। तिलक जी मानते थे कि सत्याग्रह एक प्रभावी साधन जरूर है और उसका इस्तेमाल भी कभी-कभी किया जा सकता है लेकिन स्वराज्य के आंदोलन में केवल इसी एकमात्र साधन का उपयोग करना उन्हें सही नहीं लग रहा था।

सन् 1917 के दिसंबर महीने में तिलक जी जब कांग्रेस के अधिवेशन के लिए कलकत्ता गए थे तब मुंबई की श्रीमती अवंतिकाबाई गोखले ने उन्हें लिखा था कि वे गांधी जी की जीवनी लिख रही हैं। उसके लिए प्रस्तावना लिखने की विनती उन्होंने तिलक जी से की थी। सन् 1918 में तिलक जी एक प्रतिनिधि मंडल लेकर इंग्लैंड जाने को निकले थे। तब खास समय निकालकर उन्होंने अवंतिकाबाई गोखले की लिखी हुई गांधी जी की जीवनी के लिए प्रस्तावना लिखी। इस प्रस्तावना में तिलक जी कहते हैं- "मेरे मत से गांधी जी की जीवनी बोधप्रद और अनुकरणीय क्यों है इसका कारण ढूंढ़ने के लिए विशेष श्रम करने की जरूरत नहीं है... इस कर्ममय भूमि में, जिसमें मनुष्य

की आसपास की स्थिति पर मनुष्य की सत्ता चलती है और जिससे मनुष्य द्वारा किए गए प्रयत्नों को सिद्ध होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है, ऐसे शील और चारित्र्य के उदाहरणों से आपके ध्यान में यह आएगा कि ऐसी जीवनियां बहुत कम नजर आती हैं... गांधी जी के जीवन की यही विशिष्टता है... गांधी जी की जीवनी सचमुच ही आम आदमी के लिए एक आदर्श होगी।''

आगे के परिच्छेद में तिलक जी ने गीता रहस्य के निष्काम कर्मयोग का सिद्धात सरल शब्दों में बताकर अंत में लिखा है, ''महात्मा गांधी के चरित्र से जो भी बोध हमें लेना है उसमें से यही मुख्य बोध है।''

आगे प्रस्तावना में तिलक जी ने देशभक्त का सही कर्तव्य बताकर कहा है कि सभी ओर से देश की उन्नति के लिए मुख्यतः राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में होनी चाहिए और गांधी जी का भी यही मत है। परिच्छेद के अंत में तिलक जी लिखते हैं, ''यह कर्तव्य गांधी जी ने बहुत अच्छे ढंग से निभाया है और इसीलिए वे सर्वथा सभी लोगों की तारीफ और आदर के पात्र हुए हैं।''

आगे गांधी जी के व्यक्तित्व का विवेचन करते हुए तिलक जी ने लिखा है, ''यह सही है कि सत्याग्रह का मार्ग सभी प्रसंगों में या किसी भी काल में अपनाने के योग्य होता है, तो भी हर एक प्रसंग में उसका इस्तेमाल किया जाए या नहीं, और सभी प्रसंगों में उसका फल मिलेगा कि नहीं, यह बताना मुश्किल है। फिर भी इस मार्ग की योग्यता बहुत बड़ी है यह सभी को मानना ही पड़ेगा।''

प्रस्तावना का समापन करते हुए तिलक जी ने कहा है कि सत्यनिष्ठा और आत्मबल- ये गांधी जी के दो लोकोत्तर गुण हैं और उनकी जीवनी पढ़ने से पाठकों के हृदय में जरूर अच्छे संस्कार उत्पन्न होंगे।

अमृतसर की राष्ट्रीय सभा के बाद तिलक जी पुणे वापस आए और फिर उन्होंने होमरूल लीग की पुनर्रचना करने की शुरुआत की। 30 जनवरी, 1920 को शौकत अली और मुहम्मद अली की स्वागत सभा मुंबई में हुई। उस स्वागत सभा के अध्यक्ष पद से बोलते समय तिलक जी ने कहा, "खिलाफत का प्रश्न सरकार को मुसलमानों की इच्छा के अनुसार सुलझाना चाहिए। इस मामले में हम अपने मुसलमान बंधुओं की मदद करने के लिए तैयार हैं। मैं मुसलमानों के लिए यथासंभव सब कुछ करने के लिए तैयार हूं।"

27 मई, 1920 को बनारस में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में गांधी जी ने 'असहयोग आंदोलन' के युद्ध का शंखनाद कर दिया।

23 जुलाई, 1920 को तिलक जी का चौंसठवां जन्मदिन संपन्न हुआ। उसके बाद तिलक जी मुंबई गए। वहां वे गांधी जी से मिले। उस समय असहयोग आंदोलन के बारे में उन्होंने क्या कहा, यह गांधी जी ने इन शब्दों में बताया है- "तिलक जी ने मुझसे कहा कि असहयोग का कार्यक्रम मुझे पसंद है,लेकिन इस मार्ग पर देश की जनता हमारा कितना साथ देगी उसके बारे में मुझे आशंका है। इस आंदोलन में मैं किसी भी प्रकार की बाधा नहीं डालूंगा। इस कार्य के लिए मैं आपको शुभकामनाएं देता हूं। लोगों ने यदि आपको समर्थन दिया तो मैं भी उत्साह से आपका समर्थन करूंगा।"

इसी संदर्भ में कृष्ण जी प्रभाकर खाडिलकर जी से तिलक जी की जो बातचीत हुई,उसके बारे में खाडिलकर जी ने एक लेख लिखा है। उससे यह पता चलता है कि गांधी जी की शक्ति को तिलक जी ने पहचान लिया था किंतु असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के बारे में उनके मन में निश्चित निर्णय नहीं हुआ था।

अंतिम यात्रा

20 जुलाई को ही तिलक जी कों थोड़ा-सा बुखार आया। बुखार रहते हुए वे दीवान चमनलाल के साथ उनकी मोटरकार में बाहर घूमने गए और उन्होंने उनके साथ असहयोग के बारे में चर्चा भी की। उन्होंने कहा, "असहयोग पर मेरा विश्वास है लेकिन मूल प्रश्न यह है कि असहयोग का स्वरूप क्या होगा? हमें लोगों से एक कदम आगे चलना चाहिए लेकिन आगे चलते वक्त उनसे बहुत दूर भी नहीं हटना चाहिए।"

तिलक जी ने दीवान चमनलाल को बताया कि भारत का स्वराज्य आंदोलन एकजुटता से चलना चाहिए और सभी को एकत्रित रखकर ही स्वराज्य के मार्ग पर हमें चलना चाहिए।

तिलक जी का बुखार कम होने के बजाय बढ़ने लगा। 27 जुलाई को वे बेहोश हो गए। डॉक्टरों ने उपचार के भरसक प्रयास किए। बीच-बीच में तिलक जी होश में आते थे। तब जो शब्द उन्होंने उच्चारे उससे देश के भविष्य की चिंता ही व्यक्त हो रही थी।

31 जुलाई की रात को उनका अंतिम समय नजदीक आने की सूचना डॉक्टरों ने दी और फिर आधी रात के चालीस मिनटों बाद यानी 1 अगस्त को तिलक जी की जीवन यात्रा समाप्त हुई। भारत के राजनीतिक जीवन का एक उदात्त और भव्य अध्याय समाप्त हुआ।

नये भारत के शिल्पकार

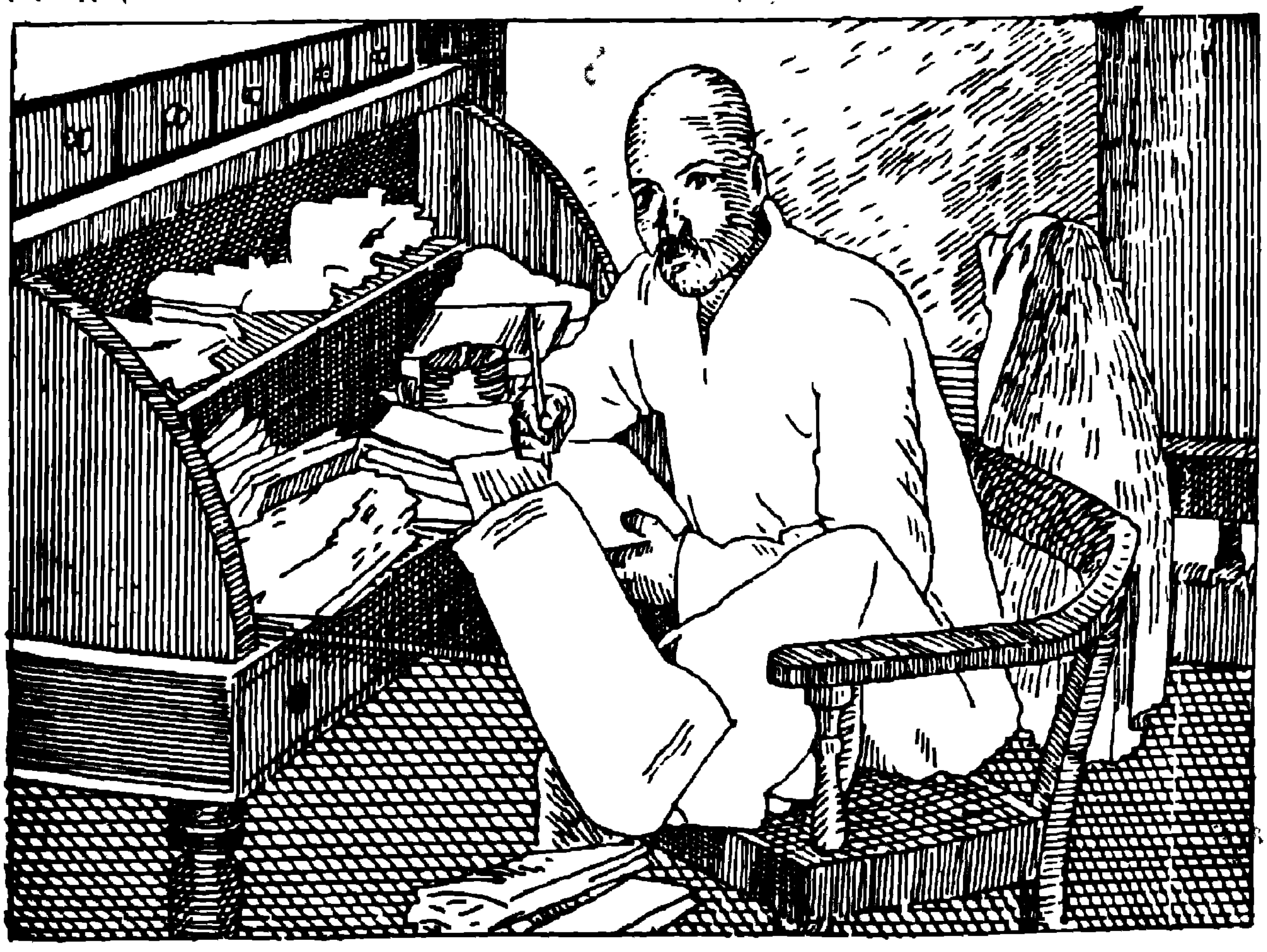
तिलक जी की मृत्यु के बाद गांधी जी ने लिखा, "लोकमान्य तिलक नए भारत के शिल्पकार थे। आने वाली पीढ़ियों के लिए उनका जीवन प्रेरणादायी होगा क्योंकि वे देश के लिए ही जिए और

देश के लिए ही उन्होंने अपना तन-मन समर्पित किया। अपने जीवन में उनकी देशभक्ति, उनका त्याग, उनकी सादगी और उनकी निडरता का अनुकरण करना, यही उनका चिरकाल तक रहने वाला सच्चा स्मारक होगा।"

5. परम विद्वान एवं लोक नेता

तिलक जी ने मांडले की जेल में 'गीतारहस्यम्' ग्रंथ लिखा। देश-सेवा करने के दौरान ही उन्होंने जो लेखन किया उससे उनकी असामान्य बुद्धि और गहरे अध्ययन की कल्पना की जा सकती है। वे हमेशा कहते थे, "मैं यदि आजाद हिंदुस्तान में जन्म लेता तो गणित का प्रोफेसर बनकर शोधकार्य करता।"

जब तक अपने देशवासी अशिक्षित हैं तब तक ज्ञान के क्षेत्र में अकेले ही विश्व में मान्यता प्राप्त करना तिलक जी को सही नहीं लग रहा था, इसलिए शोधकार्य की ओर से मुंह मोड़कर उन्होंने जिंदगीभर अपनी कलम से, वाणी से और कृति से लोक शिक्षण का ही कार्य किया।



वैचारिक भूमि

तिलक जी के राजनीतिक विचारों का क्षेत्र बड़ा विशाल था। उनकी पहली पीढ़ी के दादाभाई नौरोजी और न्यायमूर्ति रानाडे की तरह तिलक जी के मन पर भी पश्चिम के 'मिल' और 'स्पेंसर' जैसे विचारकों का बहुत प्रभाव था। किंतु इसके साथ-साथ उन्हें ऐसा भी लगता था कि अपनी प्राचीन समाज व्यवस्था जिन आधारों पर खड़ी की गई है उसमें यथार्थवादी दृष्टिकोण और सामर्थ्य अधिक है।

तिलक जी की मान्यता थी कि राजनीतिक आंदोलन के लिए सामाजिक जीवन के परंपरागत जीवन की सामर्थ्य और आधुनिकता की कल्पना-इन दोनों का समान रूप से उपयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने एक बार किसी व्याख्यान में कहा था कि हिंदुस्तान में राष्ट्रभक्ति थी, किंतु राष्ट्रवाद की अवधारणा से लोग अनजान थे।

तिलक जी का मानना था कि अपने देश के लोगों के हृदय में पाए जाने वाली राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रवाद का नया विचार-इन दोनों के सहारे ही राजनीतिक आंदोलन खड़ा करना चाहिए। इस संबंध में 'स्वराज्य और सुराज्य' शीर्षक लेख में उन्होंने स्पष्ट रूप से मार्गदर्शन किया है।

राष्ट्रीय एकता

तिलक जी यह जानते थे कि भारत के विभिन्न धर्म और अनेक जाति और अलग-अलग जीवन पद्धति के कारण देश में एकता की भावना जगाना और उसे बनाए रखना बहुत मुश्किल काम है। उनका यह पक्का विश्वास था कि ऐसी एकता का निर्माण किए बिना कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं, "हमारे हिंदुस्तान का इतिहास बताता है कि यहां पहले 56 देश थे। अब अंग्रेज सरकार की

सार्वभौम सत्ता के अधीन न सिर्फ इन 56 देशों के एकरूप होने का, बल्कि एक राष्ट्र बनने का समय आया है। यह बात राष्ट्रीय सभा के माध्यम से जितने समग्र रूप से व्यक्त हो रही है उतनी और किसी माध्यम से नहीं हो सकती।"

यदि हिंदुस्तान के लोगों में राजनीतिक आकांक्षा जागृत की जाए और लोगों को यह लगने लगे कि स्वराज्य के अलावा और कोई उपाय नहीं है तो नाना प्रकार की भिन्नताओं और भेदों पर विजय पाना संभव होगा और एकात्मता निर्मित हो सकेगी। यह जानकर तिलक जी ने रात-दिन लोगों को यह सीख दी। उन्होंने यह भी जान लिया था कि हिंदुस्तान में राष्ट्रवाद की जड़ें जमाने के लिए हिंदू-मुसलमानों का प्रश्न जटिल न होने दिया जाए बल्कि उसे मेल-मिलाप से हल किया जाना चाहिए।

तिलक जी लोगों को यह समझाना आवश्यक समझते थे कि ब्रिटिशों ने अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए 'तोड़ो और राज करो' का रास्ता अपनाया और इसीलिए हिंदू-मुसलमान के बीच बनाव बढ़ गया। इस विषय में उन्होंने लिखा, "हर सोचने वाले व्यक्ति को यह समझ में आएगा कि हिंदू, मुसलमान और सरकार-इन तीनों पक्षों पर ध्यान दिए बिना, दंगों के कारणों का ठीक से पता नहीं चल पाएगा।"

इस प्रश्न की ओर अपना मूल दृष्टिकोण रखते हुए तिलक जी ने लिखा है, "हिंदुओं की तरह मुसलमानों में भी परधर्म-सहिष्णुता के गुण का होना अपेक्षित है। हमें ऐसा नहीं लगता कि हिंदू-मुसलमानों में कभी रोटी-बेटी का संबंध व्यवहार करने जितनी उदारता या धर्म के बारे में उदासीनता आएगी। इसलिए हिंदू-मुसलमानों को जिस नाते से एकत्र रहना है वह नाता कुछ हद तक ऐसा होना चाहिए जैसा अमरीका में अलग-अलग जातियों और धर्म के एक साथ रहने वाले

लोगों में होता है।"

एक अन्य स्थल पर तिलक जी ने लिखा है, "यदि हम हिंदू-मुसलमानों के झगड़े या तनाव मिटाना चाहते हैं तो दोनों पक्षों के लोगों के उत्सव तथा त्योहार बिना किसी बाधा के मनाने में उन्हें हमें सहयोग देना चाहिए। यदि हिंदू लोगों के मुहल्ले में मुसलमानों ने गोहत्या की तो उन्हें उसकी सजा मिलनी ही चाहिए और यदि कोई हिंदू, मुसलमान कसाई के घर में घुसकर दंगा-फसाद करके गाय को छुड़ाकर ले आता है तो वह भी सजा का पात्र होना चाहिए।"

अपने मन में यह तय कर लेने के बाद कि हिंदू-मुसलमानों की एकता के बिना स्वराज्य के आंदोलन को गति नहीं मिलेगी, लोकमान्य ने राजनीतिक स्तर पर भाईचारा स्थापित करने का प्रयास किया। इसी प्रयास के कारण सन् 1916 के लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में हिंदू-मुसलमान समझौता हुआ। इस समझौते के विषय में तिलक जी ने कहा, "लखनऊ के अधिवेशन में दो प्रमुख बातें हुईं- हिंदू-मुसलमानों की एकजुटता स्थापित हुई और दोनों पक्षों ने मिलकर स्वराज्य की मांग की।" इससे यह स्पष्ट होता है कि तिलक जी हठवादी नहीं थे। उन्होंने हमेशा परिस्थिति के अनुरूप यथार्थवादी प्रयोगशील नीति अपनाई।

अंग्रेजी शासन के कारण हिंदुस्तान में एकता की भावना बढ़ी, यह धारणा तिलक जी को मंजूर थी, लेकिन अंग्रेजी भाषा के कारण नौकरशाही और चंद पढ़े-लिखे लोग एकत्रित हुए, इस बात को तिलक जी महत्व नहीं देते थे। उन्हें लगता था कि देश का कारोबार आमजन की भाषा में ही होना चाहिए और इसलिए उन्होंने डॉ. पट्टाभि सीतारमैया द्वारा प्रस्तुत भाषावार प्रांत संरचना के सुझाव को समर्थन दिया।

तिलक जी की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ था आम आदमी का राज्य। उन्होंने लिखा था, "अंग्रेज लोगों से ज्यादा हम अपनी आवश्यकताओं को अधिक अच्छी तरह समझते हैं, यह सच है। फिर भी केवल ऐसा कहने से फायदा नहीं। जनता को अपने दुख खुद आकर सभा में बताने चाहिए।" ये दुख लोग अपनी मातृभाषा में ही कह सकेंगे, इसका एहसास तिलक जी को था, इसलिए भारतीय भाषाओं के विकास के लिए उन्होंने निरंतर आग्रह किया। किंतु भाषा के इस गर्व से प्रांतीयता की भावना प्रबल होगी, ऐसा एक भी वाक्य उनके लेख या भाषण में देखने को नहीं मिलता।

वे लिखते हैं, "राष्ट्रीय सभा में एकमत होने के पहले हर प्रांत में, इसके पहले हर जिले में और इसके पहले हर गांव में एकमत होना चाहिए। इस प्राकृतिक क्रम के अनुसार जिस दिन हमारे प्रयास जारी रहेंगे, तभी हम सच्चे अर्थ में राजनीतिक अधिकार पाने के हकदार होंगे।"

तिलक जी का राजनीतिक जीवन ऐसे ही प्रयासों की एक गाथा है। उन्होंने पूरे देश में तूफानी दौरे किए। सरल और सीधे-सादे शब्दों में स्वराज्य का संदेश लोगों तक पहुंचाया और आम आदमी के हृदय में देशभक्ति की ज्योति जलाई।

राष्ट्रवाद को एक सैद्धांतिक विचारधारा न मानकर, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह मैं लेकर ही रहूंगा' ऐसी सिंहगर्जना करके उन्होंने देश के कोने-कोने में वीरता जगाई। इसलिए प्रा. गोवर्धन पारेख ने उनके जीवन का वर्णन 'भारतीय राष्ट्रवाद के शिल्पकार' के रूप में किया, जो एकदम उचित है।

स्वराज्य और सुराज्य

लोकमान्य तिलक ने भारत को केवल राष्ट्रवाद ही नहीं सिखाया बल्कि उन्होंने यह भी सीख दी कि राष्ट्रवाद की पद्धति के साथ लोकतंत्र ही होना चाहिए। 'केसरी' के 'स्वराज्य और सुराज्य' शीर्षक अग्रलेख में उन्होंने इसका विस्तृत स्पष्टीकरण दिया है। वे लिखते हैं, "दुनिया में शिक्षा का जितना अधिक प्रसार होगा उस अनुपात में केवल स्वदेशी राजा और सुव्यवस्थित राज्य व्यवस्था होने से लोग संतुष्ट होंगे, यह संभव नहीं। इतना ही नहीं बल्कि लोग ऐसा भी कहने लगेंगे कि प्रजातंत्र शासन को छोड़कर सच्चा स्वराज्य होगा ही नहीं और स्वराज्य के अलावा दूसरा राज्य सुराज्य हो ही नहीं सकता। स्वराज्य और सुराज्य का अर्थ अंततः एक ही है।"

स्वराज्य के लिए रानाडे और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे विलक्षण बुद्धिमान और परम विद्वान लोगों के किए हुए कार्य के प्रति तिलक जी उनका बहुत आदर करते थे। सर्वस्व का त्याग कर असीम कष्ट उठाने वाले और देश के लिए बलिदान करने वाले वीर-क्रांतिकारियों के लिए भी तिलक जी के मन में प्रेम और आदर का भाव था। उन्हें लगता था कि स्वराज्य के लिए केवल ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयास ही काफी नहीं होंगे। आजादी के आंदोलन में असंख्य लोगों को भाग लेना चाहिए, यही उनका आग्रह था। इसलिए उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षण और स्वराज्य जैसा चार सूत्री कार्यक्रम देश के आम आदमी के सामने रखा और उस पर अमल भी करके दिखाया। सन् 1918 में गांधी जी रॉलट एक्ट के खिलाफ सत्याग्रह करके आजादी के आंदोलन को विस्तृत रूप दे रहे हैं, ऐसा तिलक जी को विश्वास हुआ और इसीलिए उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन का समर्थन किया। तिलक जी ने जिंदगीभर देश के लिए

कष्ट उठाया किंतु अपने कार्य के प्रति उन्हें कभी अहंकार नहीं हुआ। उन्हें ऐसा लगता था कि मातृभूमि की आजादी के लिए भरसक प्रयास करना उनका कर्तव्य ही है और यह करते समय उन्होंने सभी दु:ख-दर्द खुशी से सह लिए। उनका हृदय देश-सेवा में ही मगन रहता था इसलिए वे खुद के लिए कोई विचार भी नहीं करते थे।

उनका खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता और रहन-सहन बहुत सीधा-सादा था। उन्हें मौज-मजा और ठाट-बाट से सख्त नफरत थी। उनका बर्ताव सख्त था किंतु बोलने में वे मुंहफट और स्पष्टवादी थे। उनकी सादगी के कारण लोगों को उनके प्रति प्रेम और निकटता महसूस होती थी और इसीलिए कई लोग उन्हें 'तेली-बरईयों' के नेता कहते थे।

सार्वजनिक काम करते समय तिलक जी को पारिवारिक कष्टों का भी सामना करना पड़ा। मित्र को दिए हुए शब्द के लिए उन्हें एक अवसर पर बिना किसी वजह बहुत कष्ट हुए। सन् 1897 में जब तिलक जी पर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था तब उनके मित्र बाबा महाराज पंडित बहुत बीमार हुए। तिलक जी ने उन्हें वचन दिया कि उनके वसीयतनामे के अनुसार सारी व्यवस्था की जाएगी और वसीयतनामे पर कार्रवाई करने की जिम्मेदारी उन्होंने एक विश्वस्त के रूप में कबूल की। उसी दिन पंडित का निधन हुआ। पंडित जी की कोई संतान नहीं थी। अतः वसीयतनामे के अनुसार तिलक जी ने कार्यकारी विश्वस्त के रूप में ऐसा निर्णय किया कि पंडित जी की पत्नी ताई महाराज अपने ही रिश्तेदारों में से छोटी उम्र का कोई लड़का गोद लें। यह दत्तक विधान धर्मशास्त्र और कानून के अनुसार विधिवत संपन्न हुआ था।

आगे कुछ झगड़ालू लोगों ने तिलक जी पर आरोप लगाया कि यह

दत्तक विधान विधिवत हुआ ही नहीं और तिलक जी ने जो किया वह सब गैरकानूनी था। उन्होंने तिलक जी पर दीवानी और फौजदारी का मुकदमा दायर कर दिया। सन् 1903 में निचली अदालत ने तिलक जी को दोषी ठहराकर डेढ़ वर्ष की कैद और दो हजार रुपये दंड की सजा सुनाई। तिलक जी ने इस फैसले के खिलाफ अपील की। हाईकोर्ट ने उन्हें आरोप से तो मुक्त कर दिया लेकिन न्यायमूर्ति ने ऐसी टिप्पणी की कि तिलक जी ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है।

इस पर तिलक जी ने प्रिवी कौंसिल से अपील की। इंग्लैंड के इस सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1915 में स्पष्ट निर्णय दिया कि इस प्रकरण में तिलक जी पूरी तरह निर्दोष हैं।

इन बारह वर्षों के दौरान तिलक जी को बहुत मानसिक दुख हुआ, लेकिन आखिर वे निष्कलंक साबित हुए। यह प्रकरण उनके लिए एक अग्नि परीक्षा ही था किंतु तिलक जी इस अग्नि परीक्षा में कसौटी पर कसकर बाहर निकले। मित्र को दिए हुए वचन का पालन करने के लिए उन्होंने सब कुछ सह लिया।

सार्वजनिक कार्य करनेवाले नेता का चरित्र जब निष्कलंक होता है तभी आम लोग उस पर विश्वास करते हैं। तिलक जी का शुद्ध चरित्र, स्वार्थत्याग, निडरता और दिए हुए शब्द का पालन करने की उनकी वृत्ति के कारण ही उन्हें लोकमान्यता मिली और 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह मैं लेकर ही रहूंगा', इस घोषण से उन्होंने असंख्य भारतीय जनता के हृदय में देशभक्ति की ज्योति जलाई।

लोकमान्य तिलक की उत्कट देशभक्ति, अपने देशवासियों को निडर बनाने और उनके हृदय में आजादी की आकांक्षा जागृत करने के लिए उनके द्वारा किए गए कार्य और उनके उदात्त विचारों से भारतीय लोगों को निरंतर प्रेरणा मिलती रहेगी।